अनमोल वचनामृत

संकलन : स्वामी निरंजन

अनमोच वचनामृत

संकलन : स्वामी निरंजनजी

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : **अमृतसागर,अप्रेल –२००६**
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर – २ (उड़िसा) फोन : 0674-2340136
प्रच्छद प्रस्तुति : **विभु**
मूल्य : **रु** 20/-

महर्षि मुक्त
के
अमृत वचन

देव दुर्लभ मानव जीवन बड़ी लम्बी कष्ट प्रद यात्रा के बाद प्राप्त हुआ है जो केवल मुक्ति को प्राप्त करने हेतु ही है । लेकिन बचपन खेल में, जवानी विषय भोगों में तथा वृद्धावस्था चिन्ता, रुग्णता एवं मृत्यु भयमें बीत जाता है । इस प्रकार पशु की तरह यह जीवन समाप्त हो जाता है ।

अतः मुमुक्षुओं को देहात्म बुद्धि वालों का संग, दृश्य संसार की सत्य मानने वाले लोगों का संग एवं परमात्मा के प्रति भेद बुद्धि रखने वाले, कराने वाले महात्मा का संग कभी नहीं करना चाहिये । असत से दृष्टि हटा सत्य की ओर, दृश्य से दृष्टि हटा द्रष्टा की ओर करना चाहिये । यदि यह जीवन में आत्म ज्ञान नहीं है तो वह मनुष्य, पशु के समान है । **''विद्या विहीना पशुभि समाना''** । अगर अपने को देह माना तो परिवार की चिन्ता एवं मोह पकड़ लेगा, फिर रोते रहोगे सारे जीवन यदि तुमने यह बात निश्चित रूप में जानली की मैं देह नहीं हूँ तो फिर कोई भी मेरा नहीं है । फिर कोई चिन्ता, मोह, भय नहीं पकड़ेगा, न रोना पड़ेगा । हंसते-हंसते शरीर त्याग कर दोगे । लेकिन तुम तो भेद वादी की कथा बहुत प्रेम से सुनते हो । रोना ही तो तुम्हें पड़ेगा।

मन से दीन-हीन पना, जीव भाव निकाल दो एवं मुझे ईश्वर, मुक्ति प्राप्त करना है यह भ्रान्ति को भी मनसे निकाल दो । दृढ़ता से निश्चय करो कि मुझे कुछ नहीं चाहिये । मैं केवल द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ । न जन्मा हूँ न मरूँगा । जब तक आन्तरिक अज्ञान दूर नहीं होगा तब तक देह भाव, जाति भेद दूर नहीं हो सकेगा ।

आप असंग हैं । आप के कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा घ्राण ने जीवन में कितना शब्द, स्पर्श, रस,रूप, गंध ग्रहण किया किन्तु वे किसी भी विषय में आसक्त नहीं हुए तब तुम इन इन्द्रियों के द्रष्टा होते हुए भी कैसे विषयों में आसक्त हो सकते हो ? तुम्हारे मन को ही देखो उसने जीवन में कितने विषयों को भोगा है किन्तु मन किसी इन्द्रिय के विषय में आसक्त नहीं हुआ, तब तुम इस चंचल विषय भोक्ता मन के भी द्रष्टा कैसे विषय में आसक्त हो सकोगे ? कभी नहीं । नेत्र, श्रोत्र, प्राण अपने स्वाभाविक धर्म में जीवन पर्यन्त रहते हैं तुम उनके धर्म में बाधा न डालो; तुम केवल अपने साक्षी, द्रष्टा धर्म में स्थित रहो । उपनिषद आपके स्वरूप को असंग ही बताता है । **'असंगो ही ह्यं पुरुष'** ।

जैसे दिखते हुए भी टी.वी. के भीतर कुछ भी हाथी, घोड़ा, ट्रेन, हवाई जहाज, मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते तब ध्यान, समाधि, जप, तप, कुण्डलनी अपने निराकार आत्मा तक कैसे पहुंच सकेंगे ? क्योंकि असंग पुरुष का किसी के साथ संयोग सम्बन्ध नहीं हो सकता ।

जैसे आकाश धूमिल नहीं हो सकता इसी प्रकार आपके स्वरूप में हिन्दु, ब्राह्मण, शुद्र,स्त्री, पुरुष का प्रवेश नहीं है । जिसको स्वरूप का बोध नहीं हुआ है उसे कोई भी कुत्ता, गधा, सुवर बना सकेगा । हिन्दु, ब्राह्मण, मुस्लिम, जैन बना सकेगा । आप नाम, रूप उपाधि से रहित असीम हैं । घट उपाधि से आकाश सीमित व खण्डित नहीं होता, इसी प्रकार देह उपाधि से तुम आत्मा खण्डित एवं सीमित नहीं हो सकते । तुम असीम भूमा ही हो 'यो वै भूमा तत्सुखमस्ति' अतः तुम सहजानन्द हो ।

मैं सत्य हूँ, मैं अविनाशी हूँ ऐसा अपने स्वरूप के प्रति जानने जैसा कोई आनन्द नहीं है । विषयों का सुख अल्प है । **'न अल्पे सुखमस्ति'** मैं विभू हूँ, अखण्ड हूँ इसलिये मुझे कोई कामना नहीं, कोई भय नहीं, कोई मृत्यु नहीं इसलिये मैं सदानन्द हूँ ।

जैसे रजाई कम्बल आपको गर्मी नहीं पहुँचाते हैं बल्कि आप के द्वारा रजाई, कम्बल, कपड़े गर्मी प्राप्त करते हैं । इसी प्रकार विषय आपको सुख नहीं पहुँचाते हैं बल्कि आप से इन्द्रिय; मनादि सुख पाकर सुखी होते हैं । आनन्द के भण्डार, अमृत सागर हम हैं । ज्ञानी दूसरे की चाह के बिना, अपेक्षा के बिना निजानन्द में जीता है, अज्ञानी विषयों को प्राप्त करके भी दुःखी रहते हैं ।

श्रवण मात्र से मुक्ति तभी सम्भव है जब आप प्रथम से ही मुक्त होंगे अन्यथा श्रवण मात्र से मुक्त नहीं हो सकेंगे । श्रवण मात्र से कोई राजा तभी हो सकता है जब वह प्रथम से ही राजा होगा लेकिन किसी कारण से अपने राजा पने को भूल गया हो तो फिर उसे स्मृति करादेने से उसको राजा होने में किंचित् भी देरी नहीं लगती । कर्ण का सूद पुत्र मानना एवं सिंह सन्तान का भेड़ मानना प्रसिद्ध द्रष्टान्त रूप हैं ।

वृक्षों का सम्बन्ध जमीन में छुपी जड़ों से जुड़ा हुआ है, चाहे वृक्ष उन जड़ों को न जाने, न देख सके । यदि जड़े न होती तो वृक्ष ही न होता, न यह खड़ा हो पाता । यदि वृक्ष जड़ देखने लगें तो वृक्ष ही मर जावेगा । इसी प्रकार परमात्मा तुम्हारा प्राण है । तुम जीवित हो यही परमात्मा होने का प्रमाण है । तुम जिन्दा हो यह परमात्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करता है । अज्ञानता से जीव ब्रह्म स्वरूप को यहां वहां क्यों खोजते हो ? यदि ब्रह्म से जीव अभिन्न न होता तो जीव का जीवत्व ही न रहता, जीवन ही नहीं रहता । परमात्मा अभी है, यहां है, तुम हो । तत्त्वमसि यह वेद की घोषणा है । तुम उस बात के लिये चेष्टाकर रहे हो जो पहले से ही है । जो कभी खोया ही नहीं उसे खोज रहे हो । '**कस्तुरी कुण्डल बसे**' ।

सद्‌गुरु इतना ही काम करता है कि वह तुम्हारे भूले स्वरूप की स्मृति करा देता है । ज्ञान की अग्नि प्रकट कर अज्ञान की राख उड़ा देता है । देहभाव मिटाकर आत्मभाव जाग्रत करा देता है ।

तुम ध्यान, समाधि, कुण्डलनी जाग्रत कराकर आनन्द खोजने की कुचेष्टा मत करना । आनन्द कोई इन्द्रिय विषयों की तरह भोग्य वस्तु नहीं है । वह आपका सहज स्वभाव है । आनन्द का मतलब मैं अमृत आत्मा सदा रहनेवाला, ज्ञान स्वरूप पूर्ण हूँ । यह धारणा ही परमानन्द रूप है ।

बहुत लोग अपने को सत तथा चित रूप, याने ज्ञान रूप तो मानते हैं किन्तु मैं आनन्द रूप हूँ ऐसा वे नहीं मानते हैं । याद रखो ! सत्य जैसा ज्ञान नहीं, सत्य जैसा धर्म नहीं, सत्य जैसा आनन्द नहीं । मैं ही सत्य, मैं ही आनन्द हूँ । आनन्द किसी मन, बुद्धि वृत्ति का विषय नहीं है । **'सत्य समान धर्म नहीं आना' धर्म न दूसर सत्य समाना** । देह को मैं मानने जैसा कोई पाप नहीं। **'नहीं असत्य सम पातक पूंजा'** ।

आपको केवल दृष्टि बदलना है देह से हटाकर देही पर लाना है । कहीं चलकर, साधन कर पहुंचना या प्राप्त करना नहीं है। जब नाम, रूप जगत को कल्पित जान लिया तो फिर उसे छोड़ना ही क्या ? कल्पित से हमें क्या तकलीफ । कल्पित को सत्य जानने से हमें दुःख है । अलंकारादि वत शरीर नष्ट होने का भय है किन्तु स्वर्ण वत आत्मा का बोध होने पर दुःख, भय नहीं।

इन जगत् वालों ने, परिवार वालों ने आपको जो परिचय कराया वह अन्तवाले का परिचय कराकर दुःख रूप संसार के आवागमन में फंसा दिया । **'अन्तवन्तो इमे देहा'** यह हमारा परिचय नहीं है । यह देह हम नहीं हैं । हमारा परिचय वशिष्ठ, राम, कृष्ण,शुकदेव, तोतापुरी आदि महापुरुषों से जानेंगे । आश्चर्य है कि जिन्होंने आपको गलत परिचय कराया है उन्हें तो आप आपना परम हितैषी मानते हैं एवं जिन्होंने आपको यथार्थ बोध दिया उन्हें अपना शत्रु जान, जहर देकर मार डाला । देह का परिचय तो नींद में, मूर्छा में, ध्यान में छूट जाता है यह आपका परिचय नहीं है । श्रुति आपका परिचय बताती है **तत्त्व–मसि** ।

जैसे धनी तो कोई-कोई होते हैं शेष प्रायः सभी निर्धन होते हैं । इसी तरह श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ट कोई एक होते हैं शेष सभी संत रूप में वासना युक्त निर्धन ही होते हैं । जो मंत्र, माला, पूजा, पाठ का बोझा चढ़ाते हैं, वे संत नहीं । जो बोझा उतारते हैं, बाह्य ध्यान, समाधि, पूजा, पाठ, यज्ञ, दान, तीर्थ, मन्दिरादि साधनों द्वारा परमात्मा की प्राप्ति को आसाध्य बताकर नेति-नेति कह जीवको उसके स्वरूप से परिचय कराकर देहभाव छुड़ा देते हैं, वही संत हैं ।

वेदान्त ज्ञान के आचार्य से कभी भी संसार के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं करना चाहिये । आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य प्रश्न से जीव का कल्यान नहीं होगा ।

श्रोता वक्ता ज्ञान निधि कथा रामकी गूढ ।
किमि समुझहि जीव जड़ कलिमलग्रसित विमूढ ।।

वेदान्त के जिज्ञासु को वेदान्ताचार्य को पाकर एक ही प्रश्न करना चाहिये कि "**मैं कौन हूँ**" ? और गुरु का भी स्पष्ट यही उत्तर होना चाहिये कि "**तू वही परमात्मा है ।**" श्रीराम जब वशिष्ठ जी के दरवाजे को खटखटाते हैं तब वशिष्ठजी ने पूछा कौन है ? तब राम ने कहा यही बात तो पूछने मैं आपके पास आया हूँ की मैं कौन हूँ, यह बात मैं नहीं जानता हूँ ?

हर देश प्रांत नगर ग्राम में लोग केवल पूछकर ही पहुँच जाते हैं । इसी प्रकार सद्गुरु द्वारा श्रवण कर के बोध हो जाता है । पूछकर चलना नहीं पड़ता क्योंकि परमात्मा में व जीव में दूरी नहीं है । जिसे यात्रा कर प्राप्त किया जावे या पहुँचा जावे ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो, श्रोतव्यो, मन तव्यो......

श्रवण ही ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र साधन है । संशय है तो मनन, निदिध्यासन साधन की जरूरत है । हनुमान, शुक, नारद, राम, कृष्ण, अर्जुन सभी वेदान्त ज्ञान श्रवण कर स्वरूप बोध को प्राप्त हुए हैं ।

जो अभी, यहां उपस्थित है, उन्हें अपने आपको पाने या जानने में कोई देरी, दूरी एवं कठिन साधन की जरूरत नहीं होगी । दूसरे के सम्बन्ध में हमें सन्देह हो सकता है किन्तु अपने आप का सन्देह रहित बोध सभी को है कि 'मैं हूँ 'एवं' मैं जानता हूँ ।' इस अनुभव में किसी को सन्देह नहीं है । दूसरे का चिन्तन, भजन, ध्यान कभी अखण्ड, निरन्तर नहीं हो सकता । भक्त मन कल्पित इष्ट मूर्ति का निरन्तर भजन, ध्यान कभी नहीं कर सकते ।

मनुष्य जीवन कुछ का कुछ बनजाने, पाने के लिये नहीं, किसी भोग, योग, सिद्धि, पद, प्रसिद्धि, यश, बलादि पाने के लिये नहीं है । यह जीवन केवल आत्म जिज्ञासा पाने के लिये एवं किसी आचार्य के सम्मुख होने के लिये है ।

अन्य का विस्मरण निश्चित ही होगा । क्योंकि वह परिच्छिन्न, एक देशी, एक कालिक एवं हमसे भिन्न होता है ।

कामना का त्याग ही शान्ति का सर्व श्रेष्ठ सुगम साधन है । कामना पूर्ति से लोभ, पूर्ति न होने पर क्रोध, क्रोध से बुद्धि नाश एवं बुद्धि नाश से सर्व नाश होता है ।

अपने को मैं यह पुरुष, स्त्री, यूवा, प्रोढ रूप शरीर हूँ । यह मिथ्या परिचय छोड़ यह निश्चय करो कि मैं चिदानन्द रूप शिव हूँ । जैसे घट अपने को केवल घट रूप जाने एवं मिट्टी रूप से अपने को न जाने तो उसका नाश अवश्य ही होगा । उसी प्रकार यह शरीर जो घट रूप है उसे मैं हूँ कर जाने एवं मिट्टी रूप की तरह अपने को आत्मा रूप न जानना ही अज्ञान है । इसी से जन्म-मृत्यु बन्धन है ।

वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, भागवतादि ग्रन्थों में जिस ब्रह्म का निरुपण किया है, जिस ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, जिस ब्रह्म कि चर्चा की गई है वह ब्रह्म कोई और नहीं है वह आपका अपना ही वर्णन है, वह मैं का वर्णन है । वेदान्त में अन्य द्वारा अन्य का श्रवण, दर्शन, मनन करना अज्ञानी का लक्षण बतलाया है । जब अनन्य ब्रह्म मैं हूँ का बोध जाग्रत हो जाता है तब सर्व ब्रह्म मैं हूँ ऐसा एकत्व का बोध हो जाता है । अब किसके द्वारा किसका चिन्तन, मनन, दर्शन, स्पर्श, श्रवणादि करे ? वेद हमारे मन के सब बोझ को दूर करने के लिये है । नेति-नेति का मतलब है तुम मन, बुद्धि द्वारा अन्य रूप से जो कुछ किये बैठे हो, कर रहे हो, जान रहे हो वह परमात्मा वैसा नहीं है बल्कि जो करते-करते, करने से रह जाय, जिसे किया न जासके, बनाया न जासके, जो देखते-देखते, देखने से रह जाय, जिसे देखा न जासके, जिसका अनुभव न किया जासके वह ब्रह्म है और वह मैं हूँ ऐसा बोध करना ही यथार्थ दर्शन, मनन, चिन्तन, ध्यान, समाधि आत्म साक्षात्कार, मुक्ति, ब्रह्म चिन्तन, सहजावस्था है । गुरु लोग यज्ञ, तप, ध्यान, जप माला, चक्रों का बोझा डालते हैं वेद निर्बोझ करता है ।

संसारी लोगों ने जो हमारा परिचय कराया है वह असत्य का बोध कराया है एवं ऐसा अनात्मा का बोध कराना जीव के साथ विश्वासघात, आत्मघात जैसा पाप है **'आतम हन गति जाय'** ।

जैसे टेप रेकर्ड कीगई कैसिट पर पूर्व से अंकित विषय को बिना मिटाये नूतन विषय रेकर्ड हो जाता है और पुराना अंकित किया विषय स्वतः मिट जाता है, उसी प्रकार संसार वालों द्वारा जो तुम्हें तुम्हारा गलत परिचय, गलत बोध कराया गया है उसे सद्गुरु द्वारा अपने सत्य स्वरूप का बोध मन में बिठालो तो पुराना बोध मिट जायगा, मिटाना नहीं पड़ेगा । अन्तः करण को गंगा स्नान कराना नहीं, पंचाग्नी में तपाना

नहीं, चक्र भेदन करना नहीं, कुण्डलनी जागरण कराना नहीं, शुद्ध करना नहीं पड़ेगा, बस अखण्ड आत्मा का निश्चय करलेना ही एक मात्र साधन है ।

आज, अभी, अपना गलत बोध, पाप का बोझा यहां उतार कर निर्बोझ होकर प्रसन्न मुद्रा में घर जाओ, अन्यथा हरिद्वार, ऋषिकेश, त्रिवेणी जाकर बोझा उतारने जाना पड़ेगा फिर भी वहां जाकर बोझा नहीं उतरेगा । तुम गंगा में स्नान करने जाते हो और जब तट पर कपड़ा, अटैची चप्पल उतार कर स्नान करने जाते हो तब वे पाप भी बृक्ष पर चढकर बैठ जाते हैं एवं स्नानकर लौटते समय फिर वृक्ष से उतर तुम्हारे मन में घुस कर बैठ जाते हैं । कुसंस्कार के बादलों को विवेक ज्ञान की तेज प्रचंड वायु द्वारा हटाओ । ज्ञान सूर्य स्वयं प्रकाश तो वहां प्रथम से ही विद्यमान है ।

राम, कृष्ण, शंकर, देवी-देवता के बारे में तो सुनी, पढ़ी बात है कि वे थे उनके बारें में तो बहुतों के मन में संशय है कि वे थे या नहीं । सब लेखकों के मन की कपोल-कल्पित मन गठन्त कहानी, नाटक है ऐसा लोग कहते हैं, किन्तु सबसे अधिक खुशी, निर्भयता व संशय रहित बात यह है कि सबको अपने बारे में संशय रहित बोध है कि मैं था, मैं हूँ एवं मैं अपने कर्म फल भोग करुंगा, रहूँगा । मैं का बोध संशय रहित है । 'मैं नहीं हूँ' ऐसा काई अज्ञानी भी नहीं कहता है । भगवान, परमात्मा, ब्रह्म, आत्मा के नाम पर तो संशय है कि, है या नहीं, किन्तु मैं के बारे में किसी को संशय नहीं कि मैं हूँ या नहीं । आप ही है, आप ही रहगें द्रष्टा रूप में । स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, हिन्दु आदि बनकर नहीं रहेंगे ।

एक दूसरे को अपने आत्म स्वरूप का ही श्रवण, मनन, चिन्तनादि करना एवं कराना चाहिये । तत कथनं, तत चिन्तनं अन्यो अन्यः संसारी कथा करने के लिये यह देव दुर्लभ जीवन नहीं है ।

देवता आश्चर्य करते हैं कि मनुष्य जीवन पाकर भी यह लोग हमारे चरणों में आकर अनित्य वस्तुओं की मांग कर रह हैं एवं हम इन्हें प्राप्त मनुष्य जीवन को पाने हेतु परमात्मा के समक्ष भीख मांग रहे हैं ; क्योंकि साधन धाम मोक्ष द्वार रूप यह केवल मानव जीवन ही है ।

अनादि काल से जीव अपने को देह, नाम, जाति जन्म-मृत्यु वाला मानते चले आने के कारण सद्गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश कि 'तू ब्रह्म है', तू देह से पृथक् द्रष्टा है । यह बोध शिघ्रता से जीव को स्वीकार नहीं होता है । देहाभिमानी जीव सोचता है कि मैं ब्रह्म कैसे हो सकता हूँ ? मैं तो वहीं हूँ जो माता-पिता, स्वजनों द्वारा नाम, जाति, जन्म-मृत्यु वाला निश्चय कराया गया है । इस प्रकार जन्म से ही जीव को गलत परिचय कराया गया है । हैं आप आत्मा किन्तु तुम नाशवान, आनात्म शरीर हो इस रूप में मिथ्या परिचय घरवालों द्वारा कराया गया है ।

दूसरे पर विश्वास करना दुःख का ही कारण है, चाहे वह भगवान, देवता हो अथवा पति, पुत्र, नौकर, भाई, मित्र, नौकरी, लोक-परलोक तथा सिद्धि ही क्यों न हो । दूसरों के सम्बन्ध में संशय बना ही रहेगा । जाते हुऐ स्त्री-पुरुष अथवा लड़के-लड़की के बारे में सन्देह हो जाता है कि यह परस्पर कौन होंगे ? दूसरों का संशय रहित ज्ञान कभी नहीं हो सकता, किन्तु अपने सम्बन्ध में संशय किसी को नहीं रहता है कि मैं कैसा हूँ ? एवं मैं हूँ या नहीं हूँ । दूसरों को जानने, देखने, पाने की इच्छा मत करना । दूसरा धोखा है । अन्य की कामना होती है, तो वह दुःख रूप एवं नाशवान ही होगा । मै सदा सत्य हूँ ।

नारद भगवान का निरन्तर नारायण-नारायण नाम स्मरण एवं दर्शन करने पर भी कामना शून्य, वासना शून्य, चिन्ता शून्य नहीं हो सका । भगवान से सुन्दर रूप की कामना करता है ताकि वह राज कन्या से विवाह स्थल पर वर माला प्राप्त कर सके । भगवान ने अपने अनन्य भक्त

की कामना पूर्ति नहीं की, तब जो संसारी लोगों की भगवान कामना पूर्ति करते होंगे यह उनकी कितनी भ्रान्त धारणा है । भगवान वही कामना की पूर्ति करते हैं जिसके द्वारा जीव का परम कल्याण होता है ।

कामना संसारी पदार्थों की होती है, किन्तु जिज्ञासा ब्रह्मज्ञान की होती है ।

वेद, संत, गुरु, भगवान का अवतार केवल जीव के वास्तविक स्वरूप का बोध कराने हेतु ही होता है । यदि अन्य का बोध कराते होते तो हमारे लिये व्यर्थ सिद्ध होंगे । जिन राम, कृष्ण, विष्णु, शंकर आदि भगवान के नाम को आप जानते हैं वे आपसे भिन्न नहीं है, अन्य नहीं है । वह केवल आत्मा का, मैं का, आपका ही वर्णन है । इसी को ब्रह्म, परमात्मा, राम, कृष्ण आदि नाम से कहा गया है । इसे ही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, रथ-रथी, आत्मा-अनात्मा, प्रकृति-पुरुष, द्रष्टा-दृश्य, स्वयंप्रकाश- पर प्रकाश, परा-अपरा नाम से शास्त्रों के अन्दर पाएंगे ।

आत्म साक्षात्कार श्रवण पूर्वक मनन करने से होगा । मनन भी सम्यक् श्रवण करने पर होगा । निदिध्यासन भी मनन पूर्वक केवल श्रवण से होगा अर्थात् 'श्रवणं तु पूर्व गुरु' । श्रवण किये बिना मुक्ति अन्य किसी साधन से नहीं हो सकेगी । ''नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'' यह वेद का अन्तिम निर्णय है । वेद आज्ञा पर ऐसा विश्वास करते हुए श्रद्धा पूर्वक परिक्षित राजा की तरह श्रवण करें, तो श्रवण मात्र से मुक्ति हो जावेगी । यही अवस्था श्रवण द्वारा हनुमान, लक्ष्मण, राम, कृष्ण, अर्जुन, उद्धव, जनक, शुक्र, सनक, नारद आदि की हुई थी । सभी ने श्रद्धा पूर्वक एकाग्रवृत्ति से श्रवण कर मनन, चिन्तन, ध्यान किया एवं सभी स्वरूप में स्थित हो मोक्ष को उपलब्ध हुए । दसवां तू है का बोध होने की तरह गुरु द्वारा तत्त्वमसि महावाक्य श्रवण मात्र से अपने आत्म स्वरूप का साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है ।

किसी भाग्यशाली ईश्वर कृपा पात्र मनुष्य को ही 'मैं कौन हूँ' की जिज्ञासा उदय होती है । सभी अपने को अनादि से कुछ न कुछ माने बैठे चले आ रहे हैं । उन्हें 'मैं कौन हूँ' ऐसी जिज्ञासा उठ ही नहीं पाती है । लोगों ने जैसा कहा, बताया, सुनाया वैसा ही बिना सोचे, समझे संशय किये अपने को मान लेते हैं एवं जैसा वे अपने शरीर वस्त्र को देखते हैं वैसा अपने को संशय रहित स्त्री पुरुष, गोरा, काला, जवान, बूढा, हिन्दु, ब्राह्मणादि मान लेते हैं । अपने को अपना साक्षात्कार करने का अवसर ही नहीं मिला । माता-पिता जब ज्ञानी होंगे तो वे अपने सन्तान को भी यथार्थ स्वरूप के बोध के मार्ग में लगावेंगे, गुरु शरण में भेजेंगे । जहाँ उन्हें उनके स्वरूप का यथार्थ बोध हो सकेगा किन्तु यह उनका परिचय नहीं है जो माता-पिता द्वारा बोध उन्हें कराया गया है । सद्गुरु द्वारा तू शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द, स्वयं ब्रह्म है, ऐसा सत्य स्वरूप बोध कराया जायगा ।

माता पिता ने जन्म से ही हमारा गलत परिचय करा दिया कि तू मेरा बेटा, यह तेरी मां, यह तेरी जाति, यह तेरा धर्म, अभी तू बच्चा है, अब तू जवान हो गया, अब हम बूढ़े होगये है, अब मरने वाला हूँ, मरने से पहले हम कुछ अच्छे काम करलें । बस ऐसा सब समय सबसे सुनते-सुनते आपको भी अपने प्रति गलत धारणा हो गई । जैसे 'कर्ण' को तू दासी पुत्र, सूद पुत्र है । ऐसे ही अन्य जीवों को तू ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, पंजाबी, मारवाड़ी, गुजराती, उड़िया आदि है । आप जो थे उसे स्मरण न करा अन्य रूप से बोध करा आपके सच्चे द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप पर देहात्म बोध का आवरण करादिया । घरवालों ने तुम्हारे साथ आत्मघात किया है, विश्वासघात किया है । सद्गुरु बताते हैं कि तू अजन्मा, अविनाशी आत्मा है । तू किसी का बेटा बेटी नहीं है । तू शरीर नहीं है इसलिए तेरा कोई नाम, जाति, आश्रम सम्बन्ध नहीं है । आपके सत्य स्वरूप पर भ्रान्त धारणा की धूल डाल दीगई है । इस देहाध्यास रूप

धूलको महावाक्य की पवन द्वारा उड़ाना होगा, तभी मन रूपी स्वच्छ दर्पण हो जाने पर स्वरूप का साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान संशय रहित हो सकेगा । गुरु तो पूर्ण है, किन्तु शिष्य संशय युक्त, अश्रद्धावान है तो संशय रहित शुद्ध ज्ञान नहीं हो सकेगा ।

आप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, ध्यान, समाधि, जन्म-मृत्यु वाले नहीं हैं । इन अवस्था द्वारा मैं का यथार्थ परिचय नहीं है । इन सब अवस्था से जो भिन्न एवं इन अवस्थाओं का अचल, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा है वही आपका वास्तविक परिचय है । वेद केवल मेरा वास्तविक परिचय कराते हैं, अतः आप मैं-मेरा का बोझ यहां से उतार कर जाना । हम तुम्हारा बोझ बिना दक्षिणा के उतार देंगे । काशी जाकर पंडा से बोझ उतार लोगे, तो वह फिर चढ जावेगा, किन्तु यहां जो बोझ एक बार उतार दिया जाता है वह फिर कभी नहीं चढ़ सकेगा ।

वेदान्त वाक्य, महावाक्य ही जिज्ञासु को श्रवण करना चाहिये । रोचक, भयानक वाक्य श्रवण करने की आवश्यकता नहीं है ।

हमें सदा भय इसलिए बना रहता है कि हमने मरने वाले से नष्ट होने वाले से प्रीति करली है । अपनी चेतना को, अपने अहंभाव को, अपने मैं भाव को नष्ट होने वाले से जोड़ लिया है । निर्भय तभी हो सकेंगे जब हम अपने अभय, अमृत, आत्म स्वरूप से, अविनाशी, सत्य स्वरूप से अपना परिचय कर लेंगे, अपनी चेतना को अनात्म शरीर से तोड़ आत्मा में जोड़ लेंगे ।

गुरु का कर्तव्य है कि वह जिज्ञासु के मिथ्या देहाभिमान से उसे अच्छी तरह मुक्त करादे एवं उसके नित्य आत्म स्वरूप का मैं रूप से बोध करादे । श्रद्धा भाव से गुरु के समर्पण होने पर एक महावाक्य तत्त्वमसि द्वारा शिष्य को बोध हो सकेगा, जैसा कि अर्जुन, श्वेतकेतु, परिक्षित आदि को हुआ । मैं देह हूँ ऐसा मोह अज्ञान उन सभी का नष्ट हो

गया एवं मैं ब्रह्म हूँ, मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ ऐसा दृढ़बोध जाग्रत हो गया है ।

दर्पण के सम्मुख जो भी पदार्थ होता है वह सब उस पर दिखता है किन्तु दर्पण में से कुछ निकाल नहीं सकते । तब दर्पण को भी जो देख रही है आँख उसमें भी कुछ नहीं घुस रहा है तब उसको देखने वाले मन एवं मन को भी देखने वाले मुझ आत्मा में कोई भी कैसे घुस सकता है ? क्योंकि मैं आत्मा असंग है । जो दिखाई पड़ता है वह सब उसी प्रकार मिथ्या है जैसे रस्सी में सर्प, स्वप्न में संसार, कटे वृक्ष में पुरुष, मरूस्थल में जल की तरह सब दृश्य माया मात्र झूठे हैं । आप दर्पणवत असंग है, आप में कुछ भी प्रवेश नहीं कर पाएगा । समाज वालों ने हमें उल्टा बोध करया कि यह दिखाई देने वाला शरीर तू है । तू पापी है, तू क्रोधी है, तू कामी है, तू हत्यारा है, तू दयालु है, तू दानी है, तू भिखारी है । यह सब भ्रान्त की धारणा है । तुम में कुछ नहीं आया है, दर्पण में जो दिखाई पड़ता है उन पदार्थों का उनका वजन, जाति, सम्बन्धी, क्या होंगे ? की कीमत कया होगी ? कुछ भी नहीं । क्यों कि वे सब मिथ्या प्रतीति मात्र है फिर भी आप इन दृश्य पदाथों में अभिमान करते हैं कि मैंने देखा, मैंने सुना, मैंने सूंघा, मैंने स्वाद लिया, मैं चलकर आया । यह याद रखें कि आप यह सब देखते, सुनते, सूंघते हुए भी कुछ नहीं करते हैं । आप केवल द्रष्टा, साक्षी, स्वयं प्रकाश, अचल, असंग आत्मा हैं ।

आपको बिना किसी साधन के जन्म से ही यह साक्षी द्रष्टा आनन्द स्वरूप आत्मा उपहार रूप में मिला हुआ ही है । फिर यह, वह साधन कर क्यों व्यर्थ दुःख पाते हो ? सब साधन द्वारा जो कुछ, जिसके द्वारा मिलने वाला है उसके भण्डारी आप परमात्मा तो अन्दर ही बैठे हैं, यह जान सुखी हो जाओ । वह सब मैं है, अतः किसी का अनादर, निंदा, चोरी, हत्या मत करो ।

परमात्मा तुम्हारे हृदय मन्दिर में ही विराजमान हैं । यह जान निर्भय एवं खुशी हो जाओ । अज्ञानी लोग प्राप्त सत्य वस्तु का सम्मान नहीं करते हैं एवं मिथ्या वस्तु को पाने में तन, मन, प्राण समर्पण करदेते हैं । मैं ही सर्वत्र सब रूप में हूँ अतः किसी से राग-द्वेष, निंदा मत करो ।

अपने द्रष्टा, साक्षी, असंग, अखण्ड, आत्मा को मैं रूप से जानना ही आत्म बोध, आत्म दर्शन, आत्म साक्षात्कार,निर्वाण, समाधि है । ऐसी निष्ठा होना ही सहज समाधि, सहज ध्यान है । इसी को विदेह मुक्ति कहते हैं ।

सुख का बाह्य जगत एवं विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है । सुखी वह है जो समस्त दृश्य व्यवहार का साक्षी द्रष्टा हो गया है । कर्ता कभी, सुखी नहीं हो सकता । बाहर से जो मिलता है उसी का नाम दुःख है तथा भीतर से जो मिलता है बिना विषय इन्द्रिय एवं मन के वही आनन्द है । अल्प से दृष्टि हटते ही दुःख की आत्यान्तिक निवृत्ति एवं भूमा को मैं रूप जानते ही अखण्डानन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

सामने पानी से भरा ग्लास है, तुम प्यास मिटाने एच.टु.ओ (H_2+O)का फार्मूला सूत्र रट रहे हो । पीने की ही तुम्हारी तरफ से देरी हो रही है । भोजन का थाल सम्मुख रखा है और तुम भूख मिटाने पाक शास्त्र में विधि खोज रहे हो ।

जिन्होंने परमात्मा को बहुत साधन, श्रम करके पाया किन्तु अन्त में उन्हें भी यही अनुभव होता है कि यह तो बिना साधन के भी प्राप्त ही था । खोजना अज्ञान ही था, क्योंकि जिसे खोजने निकला था वह पास ही था ''मृग कस्तूरी वत'' वह स्वयं ही था । खोज के कारण ही उस तरफ से दृष्टि भटक रही थी बाहर की और । दृष्टि के द्रष्टा को दृश्य की तरह नहीं खोजा जा सकेगा । जिसे तुम खोजने निकले हो वह परमात्मा

कोई वृक्ष, फल, पहाड़, खनिज पदार्थ देश विशेष की वस्तु नहीं है । परमात्मा तुम्हारी सुगन्ध है । तुम्हारा शरीर निराकार परमात्मा की ही साकार छाया है । जब तुम चलते हो तो परमात्मा ही चलता है । जब तुम खाते हो तो परमात्मा ही खाता है । जब तुम बोलते हो तो परमात्मा ही बोलता है,जब तुम देखते हो तो परमात्मा ही देखता है ।

सुख आते हैं, दुःख आते हैं, तुम ऐसा मत जानो कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ । तुम इन सुख-दुःख से चिपटो मत । तुम इनके साक्षी रहो । दुःखको भी देखो व सुख को भी देखो, किन्तु मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ ऐसा तादात्म्य मत करो । इतना ही कहो कि सुख होता है जिसे मैं जानता हूँ और मैं देखता हूँ । बस यह देखना व जानना ही तो साक्षी होना है । यही तो ब्रह्म होना है । ब्रह्म ही स्वयं देखता व जानता है । न कर्ता बनो, न भोक्ता । तुम्हारा देखना, जानना अछुता खड़ा रहे । अपनी दृष्टि को दृश्य से मोड़ द्रष्टा पर करलो । परीधी से छलांग लगा केन्द्र बिन्दु पर स्थित रहो । परीधी पर कुछ भी घटना घटे, तुम अडोल साक्षी रहो । यही ब्रह्म है, यही सत्य है,यही मोक्ष है । ज्ञान, सत्य, अनन्त, आनन्द तुम्हारा स्वभाव है यह पाने की वस्तु नहीं है । तुम अज्ञानी नहीं । अज्ञान के जानने वाले ज्ञान स्वरूप ही हो ।

अपने को सुखी करने का एक ही साधन है कि हम सद्गुरु की शरण में जाकर केवल अखण्डानन्द स्वरूप अपने आत्मा को सोऽहम् रूप से जाने । क्योंकि आत्मा को जाने बिना शोक के सागर से पार नहीं हो सकते । **'तरति शोकं आत्मवित'** ।

◆◆◆◆◆◆◆

साक्षी ही ध्यान

तुम द्रष्टा साक्षी आत्म रूप में रहो । मन के साथ मत मिलो । मन को न राको न मोड़ो । न कहीं जोड़ना है । मन की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पहुंचाओ, तुम केवल उसे देखते रहो । देखना ही तुम्हारा स्वभाव है । मन तुम्हारी सत्ता से ही नाच रहा है तुम उसे केवल देखते रहो । मनकी राग-द्वेष, काम-क्राधादि कोई वृत्ति तुम्हारा विकार नहीं है । मन विकारों का भंडार है । मनके खेल पर न मोहित होना न क्रोधित होना । इसका ऐसा ही स्वभाव है । तुम उस पर कोई अंकुश न लगाओ । उसकी स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचाओ । तुम जाग कर देखते रहो । मन की चिन्ता, व्यथा तुम्हारी नहीं है । तुम मन माया को देखने वाले द्रष्टा मात्र हो । यह जहां भी जावे, जाने देना, तुम केवल देखते रहना । मनके खेल में, लीला में खो नहीं जाना, केवल देखते रहना । देखना ही जागना है । जागना ही देखना है ।

जब तक कोई भीतर द्वन्द्व उठ रहा है हेय-उपादेय विषय का, ग्रहण-त्याग हो रहा है, तब तक जानना की यह साक्षी की स्थिति, ध्यान की स्थिति नहीं है, अभी संसार ही चल रहा है । चाहे वह दृश्य शुभ है या अशुभ है, सुन्दर हो या असुन्दर हो तुम देखते रहना यह सब दिखने वाला अनित्य संसार ही है । मन की माया है, तुम मन के जाल में मत फंसना । मन को, विचारों को, विकारों को, चंचलता को अपना होना न समझना । असंगता पूर्वक मन एवं उसके विचारों को देखते रहो। मन के

साथ जुड़े सभी अहंकारों से अपने को मुक्त कर लेना । स्वयं में स्थित होकर अपने द्रष्टा, साक्षी, चेतन, आत्म तत्त्व में जागते रहना ।

जैसे सूर्य जगत् के समस्त शुभाशुभ दृश्यों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं सब दृश्यों से घटनाओं से, क्रियाओं से उनके फल से असंग रहता है । वैसे ही मैं आत्मा सूर्यवत अन्दर सदा प्रकाशवान हूँ, मेरे प्रकाश में यह मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करते रहते हैं परन्तु मैं इन के खेल से पृथक् द्रष्टा, साक्षी होकर देखता चला आरहा हूँ । शुभ-अशुभ सब देख रहा हूँ किन्तु मनके किसी भी कार्य में बाधा नहीं पहुँचा रहा हूँ । मन-बुद्धि रूपी जीव जैसा करेंगे उन्हें उसका फल एक दिन भोगना ही पड़ेगा । परमधन, परमानन्द, परमशान्ति भीतर है । भीतर से साक्षी भाव जागेगा तभी कर्तापन का अभिमान विलीन होगा । जब तक साक्षी भाव भीतर नहीं जागा है तब तक तुम हजारों बार गीता, उपनिषद पढ़लो किन्तु कर्तापन का अभिमान दूर नहीं होगा । हर क्षण देखते रहना, हर क्रिया को देखते रहना । मन को समझाना नहीं, तुम अपने केन्द्र साक्षी भाव में रहो । वही ध्यान है । मन को समझाने की, रोकने की कोशिश मत करना । मनको उसके विचारों को रोकना नहीं, दबाना नहीं, तुम मात्र केवल देखते रहना । अन्दर बहुत प्रकार के विचारों का, विकल्पों का जाल बिछा है, तुम किसी के साथ तादात्म्य मत करना, तुम केवल देखते रहना । तटस्थ, कूटस्थ होकर तुम साक्षी चेतन होकर देखते रहना । मन से हटकर मन की गति को देखते रहना ।

ध्यान मन की मौत है । साक्षी मन का अमन होना है **'विचारान मोक्षो भवति, तस्माद सर्वथा विचारेन'** जो स्वयं में स्थित हुआ वही स्वस्थ हुआ । नाटक देखते रहना । किसी भी अभिनेता, अभिनेत्री के अभिनय में तादात्म्य मत करना । मन कहीं भी जायें तुम देखते रहना । उसका संग न करना । उसे रोकना नहीं ।

लोग कुण्डलनी जाग्रत हेतु सारे जीवन प्रयत्न करते रहते हैं किन्तु कुछ हाथ नहीं लगता । तुम अपने में जाग जाओ । मन के प्रति जाग जाओ । स्वतः होते जला जायगा जो-जो जरूरी है । वह सब समाप्त होता चला जायगा जो जरूरी नहीं है । तुम केवल अपने साक्षी भाव मे जागते रहो ।

मन को साक्षी भाव में नित्य लगाते रहो । सहज श्वांसो में उस अनहद नाद के संगीत को सुनते रहना ।

अपने मन, बुद्धि को आत्म भाव में, द्रष्टा साक्षी भाव में समाहित करना ही समाधि है । अष्टांग योग द्वारा जो समाधि लगाई जाती है वह क्षणिक होती है । बहुत अभ्यास द्वारा लग जाने पर भी टूट जाती है । ज्ञानियों की समाधि बिना प्रयास के अखण्ड होती है ।

जब शिव सहज स्वरूप सम्हारा ।
तब लागी अखण्ड समाधि अपारा ।।

मन का स्वभाव चंचल है तो उसके स्वभाव को क्यों नष्ट करना चाहते हो ? अपने आपको कुछ मान लेना ही मन की उत्पत्ति है ।

जब सहज साधारण मैं को छोड़, मैं यह, मैं वह हूँ ऐसा कुछ असाधारण बनना चाहते हो तबही मन पैदा होता हैं । मैं को मैं मानने से इस ज्ञानाग्नि में मन एवं उसके यह, वह होने की धारणा सब दग्ध हो जाती है । मनको रोकने में जीव भाव निहित है और मन को न रोकने में शुद्ध मैं अर्थात् आत्मभाव निहित है । मन को रोको मत, जाने दो । मन से परे भगवान के ध्यान के लिये मन की एकाग्रता नहीं चाहिये । मैं अमुक हूँ, इस भाव में मन के वश मैं हो जाता हूँ और मैं, मैं हूँ इस भाव में मन 'मैं' के वश में हो जाता है । भगवान का स्मरण मन से नहीं होता । भगवान का सर्वकालीन स्मरण तभी हो सकता है जब मन के होने न होने पर भी होता रहे । ऐसा कोई भगवान है तो वह मन के भावाभाव का साक्षी मैं ही है मन को ब्रह्म आत्मा

जानने वाले ही मन को शत्रु जान उसे वश में करना चाहते हैं। मन रोकने से नहीं रुकता, मन नहीं रोकने से रुकता है। अस्तु मनको रोको मत उसे जाने दो।

प्रत्येक अवस्था में सब समय मन नारायण रूप ही है। इस लिये मन स्वाभाविक एकाग्र है। तुम स्वभावी हो मन तुम्हारा स्वभाव है। धर्मी-धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। मन के भावाभाव का अभाव जिस देश में होता है वह साक्षीआत्मा मैं हूँ। पूजा, पाठ, कीर्तन, भजन, ध्यान, धारणा, परदेश याने जीवभाव की क्रीया है। जीव देश की क्रिया है इसलिए मन वहाँ ठहरता नहीं। मन का स्वभाव मैं आत्मा है, वहाँ मन मैं रूप रहता है। पूजा, पाठ द्वारा मन रोकना दुःसाहस है। शब्द स्पर्शादिक विषयों के अनुभव काल में मैं स्वभाव में स्थित रहता है। इसलिए उस समय मन का अत्यन्ताभाव रहता है और पूजा, पाठ, ध्यान,धारणा काल के समय अपने आपको संसारी जीव मानता है इसलिए उस समय मन का प्रार्दुभाव होता है। जब तक मन कहता है कि मैं मन हूँ तब तक डोलता है। जब मन कहता है कि मैं आत्मा हूँ तब मन अडोल हो जाता है। आत्म देश में मन का अत्यन्ताभाव हो जाता है।

यदि मन चिन्ताओं से मुक्त है तो शरीर में कभी रोग नहीं हो सकता। मन रोकने के विकल्प का अभाव ही मनके रोकने का अभ्यास है। किसी भी विषयक अनुभव काल में मन नहीं रहता वहाँ मैं ही विषय रूप होकर ग्रहण करता हूँ। यदि वहाँ मन रहेगा तो विषय भोग के समय चंचल स्वभाव वश भोगानन्द में रुकावट पैदा करेगा। इसीलिए भोग काल में मैं भोक्ता हूँ यह भोग्य पदार्थ है, यह भोग क्रिया है इस प्रकार त्रिपुटी नहीं रहती है।

मन को स्थिर करना चाहो तो अपने को आत्मा जानो। यदि मन को रोकना चाहो तो अपने को जीव मानो। मन को अक्रिय बनाने हेतु उससे किसी प्रकार का कोई साधन न करना ही परम साधन है,

केवल हर अवस्था के साक्षी रहो । अपने को जानना कि ''मै'' आत्मा हूँ यही मन की उपेक्षा है । मन का नाश है । व्यष्टि दृष्टि से मन ही समष्टि दृष्टि से माया है ।

मैं से भिन्न चित्त है तो चित्त नहीं है । यदि मैं से अभिन्न चित्त है तो फिर चित्त नहीं है । चंचलता ही चित्त है और निश्चलता ही चित्त आत्मा है ।

मन की विक्षेप अवस्था एवं समाधि अवस्था की कल्पना न उठाना ही आत्मदेश का निवास है ।

तमोगुणी मन से अपना स्वरूप शरीर आकार का दिखता है ।

रजोगुणी मन मे अपना स्वरूप जीव रूप दिखता है ।

सतोगुणी मन मे अपना स्वरूप एक ब्रह्मरूप दिखता है । तीनो गुणों से रहित मैं जैसा हूँ वैसा दिखता हूँ ।

जिस समय मन सुखी-दुःखी दिखाई पड़े तो समझना चाहिये कि मन सविषय है और जिस समय सुखी-दुःखी न दिखाई पड़े तो समझना चाहिए मन नहीं केवल मैं हूँ। मनके निरोध में प्राण का निरोध है एवं प्राण निरोध में मन निर्विषय है । भगवान व गुरु को अपना मन ही देना चाहिए क्योंकि मनके सिवाय अपना कुछ नहीं है । स्त्री, पुत्रादिक अपने नहीं है ।

जो भी नाम रूप सामने आवे उसमें 'मैं' को खड़ाकर दे जहाँ तुमने 'मैं हूँ' कहा, वहाँ मन भगवान में समर्पित हो गया । यही मन, बुद्धि को परमात्मा में अर्पित करना है । मन, बुद्धि की तरफ किंचित् भी न देखना यही भगवान का चिन्तन है ।

परमात्मा जो तुम्हारे हृदय में सदा ही विद्यमान है, वह चैतन्य तुम्हारा अपना-आप है । यही आत्म ब्रह्म है । यही परमात्मा की याद है कि वह मैं हूँ।

यदि चैतन्य को तुमने दृश्य के रूप में देखा या देखना चाहोगे तो फिर उसे नाश वान कहना पड़ेगा । यदि यह समझ लिया कि घड़ा मिट्टी से पृथक नहीं है तो फिर वह घड़ा मिट्टी रूप से सत्य है, क्योंकि मिट्टी का नाश नहीं है । यदि मिट्टी को घड़े के रूप में देखा तो घड़े का नष्ट होना अवश्य है । क्योंकि यह अकाट्य सिद्धान्त है **'यत यत साध्यं तत तत अनित्यम ' 'यत दृष्टम तत नष्टम'** जगत् में भी यह अटल सिद्धान्त देखा गया है । यदि गहना सोने से जुदा नहीं तो सोना ही है, गहना है ही नहीं । इसी तरह जगत ब्रह्म से भिन्न नहीं है तब ब्रह्म ही है ।

आंख बन्द करके, अन्यत्र आकाश में रहने वाले कल्पित परमात्मा का ध्यान नहीं करना है । वह अन्य नहीं है । वह परमात्मा 'यह-वह' नहीं है । परमात्मा तुम्हारे अन्तःकरण में समस्त सद्-असद वृत्तियों के भावाभाव का उद्गम एवं लय का साक्षी आपना आप है । अपने भूले स्वरूप को याद करना ही जीव का परम लक्ष्य है । इस स्वरूप की याद करा देना ही सद्गुरु का परम कर्तव्य है ।

मायावश स्वरूप बिसरायो । यहि कारण दारुण दुःख पायो ।

यह रूप में जितना भी दृश्य जगत् है वह सब अनित्य संसार ही है । यह मन, बुद्धि, आंख, कान, नाक, हाथ, पैर, मुख सब अनित्य दृश्य संसार है । यह का 'इदम' का प्रकाशन अऽहम् ही सत्य है, वही तुम हो । तुम चैतन्य, द्रष्टा, साक्षी आत्मा हो । बस इतना ही जानने, सुनने, समझने, याद करने का है । इन्द्रियां अपना अपना काम कर रही है । तुम मात्र द्रष्टा, ज्ञाता, साक्षी आत्मा, प्रकाशक हो ।

''इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ''

जब तुम स्वयं परमात्मा हो, तब भजन, सुमिरन, ध्यान किसका करोगे ? मिट्टी को भूलसे घड़ा माना तो वह टूट रहा है, मर रहा है ।

यदि घड़ा अपने को मिट्टी जान ले फिर उसे कोई तोड़ नहीं सकता । आत्मा को जाने बिना सब मर रहे हैं । आत्मा ही मैं हूँ ऐसा दृढ़ता से जान लेने पर तुझे कोई किसी प्रकार मार नहीं सकता । इस बोध के बिना तुम्हें मुक्ति कराने का अन्य कोई साधन नहीं है ।

तमेव विदित्वति मृत्यमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽनाय
''जन नानक बिन आपाचिन्हे, मिटै न भ्रम की काई''

आपा का अर्थ स्वयं अपने आप को समझे । अपना आपा हाथ, पैर, आंख, कान, नाक, मुंह, प्राण, मन, बुद्धि, विचार, वृत्ति चिदाभास जीव नहीं है, बल्कि इन सभी को जो एक प्रकाश रहा है, जान रहा है वह आपा है, वह आप है । वृत्तिज्ञान के उदय होने व लय होने को, मन के चंचल होने व शान्त होने को जो जान रहा है वह साक्षी अपना आपा है ।

तुम ध्यान में दिखने न दिखने के साक्षी हो । कोई प्रकाश दिखे अथवा अन्धकार दिखाई पड़े किन्तु तुम साक्षी सदा रहते हो । तुम जान रहे हो साधना करने के नाम पर जानने की यह एक ही उत्तम बात है की कोई रहे या न रहे, कुछ दिखाई पड़े या न पड़े, कोई आये या न आये । लेकिन तुम्हारा अभाव कभी नहीं होता जो सदा रहता वही सत्य है, वह तुम हो । ध्यान, समाधि, मंत्र, वृत्ति सदा नहीं रहती इसलिए 'असत्य है' । तुम्हारे अलावा कुछ भी सत्य नहीं है । यहाँ भी ध्यान के माध्यम से आप यही जानते हैं कि तुम चैतन्य आत्मा हो, तुम सब दृश्यों के द्रष्टा साक्षी हो । ध्यान में दिखने वाला दृश्य, घटना सत्य नहीं है बल्कि उस दृश्य का प्रकाशक तुम ही एक सत्य हो । **नाभाबोबिद्यते सतः** २।१६ गीता

जो गुरु स्वयं तीर्थ, मन्दिर में भजन, ध्यान कुण्डलनी में भटक रहे हैं, वे अपने चेलों को भी वहीं ले जाएंगे एवं वही कराएंगे ।

तीर्थ दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाण के सदा । जाबाल दर्शन ३४
शिवं पश्यति मूढ़ात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।। ४/५८

आत्म स्वरूप परमात्मा सबके देह मन्दिर में विराजमान हें उसे मैं रूप न जानने वाला मूर्ख तीर्थ, दान, जप, यज्ञ काष्ठ और पाषाण आदि निर्मित धातु प्रतिमांओं में एवं गंगा, जमुना, त्रिवेणी आदि नदियों में ही पुण्य, स्वर्ग, वैकुण्ठ एवं मुक्ति को रवोजा करता है ।

आत्म तीर्थं समुत्सृज्यं बहिस्तीर्थानि यो ब्रजेत ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते । ४/५०

देह स्थित आत्म रूप तीर्थ का त्याग करके बाह्य जल, पाषाण निर्मित स्थानों को तीर्थ मान जो मूर्ख सदा बाहर ही भटकता रहता है बह मानो ऐसा मूर्ख है जो हाथ में रखे रत्न को त्याग करके कांच को पकड़ता हुआ धन्य मान धोखे में जी रहा है ।

मैं ध्यान करूँ, भजन करूँ, समाधि करूँ, यह सकंल्प भी चैतन्य में कल्पित है । यह ध्यान की वृत्ति भी चैतन्य में कल्पित है । याद रहे ! देखने की जब तुम्हें इच्छा होती है, देखने का जब प्रयास होता है तब तुमही द्रष्टा होते हो, तुम ही दृश्य होकर, तुमही दर्शन रूप त्रिपुटी होते हो । एक ही चेतन द्रष्टा, दृष्टि एवं दृश्य है और एक ही चेतन जो बिना द्रष्टा, दृष्टि एबं दृश्य के सत्ता मात्र है, ज्ञान मात्र है वह तुम हो । जहाँ भी हो, जब भी हो, जो भी हो तुम जरूर हो, तुम्हारे बिना कुछ नहीं है ।

'' अहं भोजन नैव भौज्यं न भोक्ता, चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्''

वेदान्त मरने के बाद स्वर्ग, नरक, बैकुण्ठ, सत लोक की बात नहीं बताता । वेदान्त कहता है जो जीवित अवस्था में स्वर्ग में निवास नहीं करता वह मरने के बाद भी स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकेगा । जो जीवित में मुक्ति प्राप्त नहीं कर सका वह मरने के बाद भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा ।

जीविन समझो जीवित बुझौ जीवित मुक्ति निवासा ।
मरे मुक्ति कहे गुरु लोभी झुठा है विश्वासा ।।

कबीर

पाप व पुण्य, स्वर्ग या नरक से उपर उठाने वाला यदि कोई साधन, भजन, ध्यानादि है तो वह एक मात्र आत्मा का अनुभव ही है । थोड़ा सा अपराध हो जाएगा तो बड़े पापी बन जाओगे । थोड़ा सा सत्कर्म हो जाएगा तो महान पुण्यशाली बन जाओगे । इस प्रकार के चिन्तन में फंसे रहोगे तो जन्म –मृत्यु, पुण्य–पाप, सुख–दुःख द्वन्द्व से कभी मुक्त नहीं हो सकोगे । सत्य आत्मा अर्थात् स्वरूप ज्ञान होने के बाद ही कोई जीव इस द्वन्द्व से छुटकारा प्राप्त कर सकता है । बिना ज्ञान के जन्म–मृत्यु, बन्ध–मोक्ष के भय से नहीं छूट सकेंगे । सत्य आत्मा का बोध हो जाने पर मालुम पड़ेगा कि वहाँ न जन्म है न मृत्यु, न सुख है न दुःख, न पुण्य है न पाप, न अपना है न पराया ।

''अविचार कृतो बन्धो विचारा–मोक्षो भवति । तस्मात्सदा विचारयेत''

देह मानकर जीने वालों को कोई संत भागवान मंत्र, तप, अमर नहीं कर सकता । भगवान स्वयं देह दृष्टि से अमर नहीं रहे तब वे अपने भक्तों को, गुरु अपने शिष्यों को कैसे अमर बना सकेंगे ?

तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति ।

। ५० । ध्यान बिन्दु उप. ।

जब तक जीव अपने को देह मानता रहेगा, तब तक जन्म–मरण चक्र से कभी मुक्त नहीं हो सकेगा । जब सद्‌गुरु की कृपा से अपना सम्यक् ज्ञान हो जायगा कि मैं देह नहीं, देह का द्रष्टा, साक्षी, अत्मा, हूँ तब यह जीव बिना साधन के मुक्ति को प्राप्त कर सकेगा ।

अज्ञाना देव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते ।

योग तत्व उप. १६.

अज्ञान से ही जन्म–मरण दुःख रूप संसार है और आत्म बोध होने से ही जीव मुक्त होता है ।

यदि तुम आत्मा हो तो तुम्हें भगवान भी नहीं मार सकेंगे । शत्रु या मृत्यु की तो हिम्मत ही क्या जो तुम्हें स्पर्श कर सके । अतः सदा निर्भय रहो ।

शरीर को कोई मारने आवे तो आत्म दृष्टि ही रखो कि मैं सत्य हूँ। पहले भी था, आज हूँ एवं आगे भी रहूँगा । मैं सदैव हूँ । देह मात्र वस्त्र बदलने जैसा कार्य है जो मैं सदैव से करता आ रहा हूँ, यह कोई नया कार्य मेरे लिये नहीं है । देह के तरफ ध्यान है तो भगवान् भी नहीं बचा सकेंगे । अरे ! क्यों इधर–उधर पागलों की तरह कल्पित देवी–देवता मान उनकी मूर्तियों के आगे हाथ जोड़ प्रार्थना करते रहते हो । ज्ञानी इन कल्पित देवी–देवताओं के आगे प्रार्थना नहीं करता, इनके दरवाजे नहीं खटखटाता है । आत्म ज्ञान ही दीनता एमं दरिद्रता से मुक्त कराता है । ब्रह्मज्ञानी जीते जी परमात्मा है । **'ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति '**

सिनेमा में कलाकार मरने का अभिनय प्रसन्नता से करते हैं, क्योंकि वह जानता है कि मैं मरने वाला नहीं हूँ। इसी प्रकार आत्मज्ञानी मरने के समय भी नहीं डरता ; क्योंकि वह जानता है कि मैं कभी मरता नहीं हूँ। घड़ा मिट्टी जान लेगा तो फिर फूटने से नहीं डरेगा, क्योंकि मिट्टी कभी फुटती नहीं है । बनना, बिगड़ना मिट्टी का खेल है । मिट्टी को मृत्यु का भय नहीं । इसी प्रकार जिन्होंने सत्य को जाना है उनके लिये समस्त संसार एक लीला है, एक खेल है ।

कोई ज्ञान प्राप्त न करके केवल चाहे जितने तप, तीर्थ, दान, पूजा, पाठ गंगा स्नान भजन, यज्ञ, पृथ्वी का दान भी क्यों न करले किन्तु इन सबसे जीव की मुक्ति नहीं हो सकेगी ।

तूल न ताहि सकल मिली जो सुख लव सत्संग ।

'न हि ज्ञाने न सदृशं पवित्रमिह विद्यते' गीता ४/३८

पाषाण लोहमणि मृण्मय विग्रहेषु पूजा पूनर्जनन भोगकरो मुमुक्षु ।
तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात् बाह्यार्चनं परिहरेद पूनर्भवाय ।।

मैत्रेय्यूपनिषद २/२६

सोना,चांदी, पीतल, मणि, मिट्टी पत्थर अथवा कागज, द्वारा बनाई गई मूर्तियों अथवा चित्रों की पूजा मोक्ष की इच्छा रखने वालों को पुनः जन्म एवं भोग दिलाएगी । इसलिए फिरसे जन्म न लेना पड़े ऐसी इच्छा करने वाले मुमुक्षुओं को बाहरी पूजा का त्याग कर हृदय में विराजित आत्मा का मैं रूप से चिन्तन करना ही वास्तविक परमात्मा की पूजा है ।

उत्तमा तत्त्व चिन्तैव मध्यमं शास्त्र चिन्तनम् ।
अधमा मन्त्र चिन्ता च तीर्थभ्रामंत्यधमाधमा ।।

२/२९ मैत्रेय्यूपनिषत्

'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार का चिन्तन देहाभिमान की तरह करना सबसे उत्तम साधना है । शास्त्रों का पठन, पाठन करते रहना मध्यम श्रेणी का चिन्तन है, मन्त्र चिन्तन अधम श्रेणी का है । तीर्थ भ्रमण अत्यन्त निकृष्ट श्रेणी का है । अन्य सब साधन आत्मज्ञान प्राप्ति के नहीं है । जब सद्गुरु मिलजावे तब उनका त्याग कर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।। ४/३६ गीता

यदि तुम सत्य स्वरूप आत्मा को मैं रूप अभी जान लो तो अभी बिना कुछ अन्य किये मुक्त हो । दुनियां के पुण्य एक तरफ व

आत्मा का ज्ञान एक तरफ है । आत्मज्ञान के समान जीव को पवित्र, मुक्त एवं निर्भय बनाने वाला कोई अन्य साधन नहीं है । यदि तुम्हारे बुद्धि में यह भगवान की वाणी समझ में आय तो समझलो, अन्यथा जो तुम्हारी समझ में आवे वह करो ।

जो न तरे भवसागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत निंदक मंदमति आतम हन गति जाय । रामायण

इतना स्मरण रखो कि सत्य को भूलना ही पाप है एवं सत्य, आत्मा को स्मरण करना ही महान पुण्य है । आत्मा को भूल जाना ही आत्म हिंसक है, आत्म हत्यारा है । सत्य को भूलने वाला पुण्यशाली भी पापी है । पूरे निष्पाप तो तभी हो सकते हो जब आत्मा को मैं रूप में जानलोगे ।

नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि मनो नहि ।
सदा साक्षी स्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः ।।

जाबालदर्शन. उप.१०/४

आपके देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सबको अपने काम करने दो । उनके स्वभाविक कार्य में रुकावट न डालो । बस यह जानते रहो कि यह सब अपना-अपना काम कर रहे हैं इनसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । यदि इनमे हस्तक्षेप करोगे तो तुम असंग नहीं हो सकोगे । तुम इतना ही जानते रहो कि मैं इनसे असंग साक्षी मात्र हूँ ''मैं किसी का कर्ता नहीं हूँ । आंख, कान, मन, बुद्धि को अपने काम करने दो, वह तुम्हारा संकल्प नहीं है, वह परमात्मा की व्यवस्था है । जब तुम सोचते हो मन न जावे, कान में शब्द न सुनाई पड़े, तब तुम संगवान हो गये, असंग नहीं रहे । तुम भीतर से यह ध्यान रखो कि मैं असंग हूँ । मै न कर्ता हूँ इन देह संघात का न इनको रोकता हूँ । उसी दिन तुम असंग हो, साक्षी हो,

चैतन्य हो ऐसा मालूम पड़ेगा । श्वांस तुम न लेने वाले हो, न छोड़ने वाले हो । शरीर के परिवर्तन अवस्था को तुम न बदलते हो न रोक सकते हो । तुम केवल साक्षी हो ।

घट नष्टे यथा व्योम व्योमै व भवति स्वयम् ।
तथैवोपाधि विलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ।। आत्म उप.२३

घट नष्ट होने पर घट के अन्दर वाला आकाश जैसा वही महाकाश रूप होता है इसी प्रकार देह उपाधि के विलय होते ही यह जीव विदेहमुक्ति को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मरूप रह जाता है ।

◆◆◆◆◆◆◆

मन को रोको मत

सभी का प्रायः ऐसा अनुभव है कि 'हौं हारयो करि जतन विविध विधि' मैं मन को वश करने के नाना प्रकार के साधन कर चुका किन्तु यह पवन से भी अधिक गति करने वाला मन नहीं रोक पाया । इसको तो प्रभु ही समझाकर रोक सकेंगे ।

प्रश्न होता है इसका प्रेरक प्रभु कौन है ? उत्तर जो कहता है कि मेरा मन मेरे वश में नहीं होता वही यह कहने वाला इस मन का द्रष्टा, प्रेरक, स्वामी है । देखो–अभी जब तुम सुन रहे हो तब तुम्हारा मन तुम्हारे काबू में है या नहीं ? यदि मन काबू में न होगा तो कथा सुन नहीं सकते, पर सुन रहे हो । इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारा मन तुम्हारे वश में है । अब बताओ इस कथा के सुनने से पहले इस मन को तुमने क्या योग, ध्यान, प्राणायाम, मंत्र सिखाया था जो तुम्हारे साथ कथा में आकर चुप–चाप कथा सुनने में ठहर गया ? तब क्या उत्तर देंगे कि हमने इसको वश करने हेतु कोई साधन नहीं किया, न इससे कराया बल्कि यह मन स्वतः शान्त हो बैठा है ।

मन जब वश में होता है तभी संसार के प्रत्येक छोटे बड़े काम अच्छे या बुरे काम होते हैं । जब तुम सिनेमा में तीन घन्टे कुर्सी पर जमे बैठे रहते हो बिना गर्दन घुमाये तो इसके लिये घर से बाहर निकलने से पूर्व मन से ध्यान, धारणा अथवा समाधि योग में से कौन सा साधन सिखाकर सिनेमा में आते हो ? दुकान आफिस में सब काम बिना भूले

ठीक–ठीक लेन–देन कैसे कर लेते हो ? आंख से ठीक रूप कैसे देख लेते हो, कान से ठीक कैसे सुनलेते हो, अदालत में कैसे सुनकर ठीक फैसला कर लेते हो ? खतरनाक आप्रेशन कैसे कर लेते हो । भीड़ में कैसे मोटर चलालेते हो ? हवाई जहाज ठीक उड़ाते हुए निश्चित स्थान पर कैसे उतार पाते हो ? यदि इन कामों के समय मन शांत न होता तो क्या यह सब काम करा सकते थे मन से ? कदापि नहीं । तो यह मन साधन द्वारा इतने समय वश में रहा कि बिना साधन के ? उत्तर मिलेगा बिना साधन के वश में रहा तो फिर मन की झूठी शिकायत् क्यों करते हो कि मन मेरे वश में नहीं रहता । तो मन चंचल व बेकाबु कब होता है जब मैं अपने को कुछ मान लेता हूँ ।

अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञानमेव तत् ।
अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते ।।

ब्रह्म है ऐसा बुद्धि से जानना यह ब्रह्म सम्बन्ध में परोक्ष ज्ञान है । जब यह परोक्ष ज्ञान श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास द्वारा मैं ब्रह्म हूँ इस रूप में परिणित हो जाता है तब उसे अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं । परोक्ष ज्ञान अवान्तर वाक्य द्वारा होता है एवं अपरोक्ष ज्ञान तत्त्व ज्ञान रूप महावाक्य द्वारा होता है ।

आप अभी प्रवचन सुन रहे हो तब अपने को कुछ मानकर सुन रहे हो या बिना कुछ माने स्वाभाविक रूप में सुन रहे हैं ? उत्तर बिना कुछ माने स्वाभाविक रूप में सुन रहा है । जब श्रोत्र, त्वचा, नेत्रादि के शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषय को ग्रहण करते हो तब उनका ठीक ज्ञान होता है या नहीं ? तब मन वश में रहता है या बेवश रहता है । यदि मन चंचल होता तो विषय अनुभव करपाते ? मन खट्टा, मीठा, गरम, ठंडा, नीला,पीला पहचानता है या नहीं ? यदि ठीक जानता है पहचानता है तब मन चंचल कहाँ ?

इसका रहस्य यह है कि जब 'मैं' को कुछ मानकर नहीं, बल्कि मैं अपने ' मैं' रूप निरुपाधिक ही रहता है तब यह मन अपने आप वश में रहता है और जब मैं अपने 'मैं' को कुछ मानलेता है कि मैं देह हूँ, मैं जीव हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, साक्षी हूँ , आत्मा हूँ तब मन काबु से बाहर हो जाता है । मैं को कुछ माना कि मन तुम्हारा स्वामी हो जाता है और मैं के माने 'मैं' ही हूँ। इस भाव में मन का स्वामी 'मैं' हूँ। यह मन तभी वश में होता है जब इस मन के स्वामी मैं आत्मा का बोध हो जाता है । बिना आत्मबोध हुए यह मन वश में नहीं होता ।

मैं हूँ इस भाव में तो मन नाम की कोई वस्तु ही नहीं दिखाई पड़ती । जब मैं अपने आपको कुछ मानता हूँ तभी मन पैदा होता है । अज्ञानी अपने आत्म स्वरूप को कुछ मानकर इसे प्रथम पैदा करते हैं और फिर रोकने हेतु विभिन्न प्रकार के साधन करते हैं । उनसे मन रूपी रोग दब जाता है किन्तु जड़ सहित नाश नहीं होता । इस मनके जड़ सहित नाश करने की एक ही दवा है कि मन नामकी कोई चीज ही नहीं है ।

यत्रयत्र मनोयाति तत्र तत्र परं पदम् ।। पैङ्गल उप. ४/२१

मन है ही नहीं बशर्त कि अपने को देह मान्यता, जीव मान्यता, ब्रह्म मान्यता आदि से रहित होकर देखो । मैं जैसा हूँ, जो हूँ, जहां हूँ वैसाही, वही, और वहीं ही रहता हूँ इसलिये किंचित् भी विक्षेप नहीं होता । मन नहीं रहता किन्तु जब मैं अपने को ध्यानी, ज्ञानी, त्यागी, भक्त, सेवकादि कुछ मानलेता हूँ इस मान्यता के खड़ी करने से मन भी खड़ा हो जाता है और फिर उसे वश करने हेतु किसी प्रकार का अनुष्ठान, पूजा, पाठ, ध्यान, धारणा में मनको फंसाने से मन और चंचल हो उठता है ।

नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्न भवति ।। पैङ्गल उप. ४/२३

मैं ब्रह्म नहीं हूँ मैं तो जन्मने मरने वाला कर्ता-भोक्ता एक अधम जीव हूँ ऐसा मानने वाले की कभी मुक्ति नहीं हो सकेगी ''यथा मति तथा गति भवति'' ।

अरे भैया ! यदि मन होता है तो भी वह मैं ही तो हूँ । वेद तो चिल्लाकर कह रहा है कि यहाँ मुझ अखण्ड आत्मा के याने मैं के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । **'एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किंचिन्'** । समझो अलंकार कुछ नहीं है और यदि अलंकार है तो स्वर्ण ही है । जहां तक मन जाता है वहाँ तक मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है और फिर जहाँ जा रहा है वह भी मैं ही हूँ, इन्द्रियों में मन मैं हूँ । **इन्द्रियाणां मनस्चास्मि भुतानामस्मि चेतना ।।१० ।२१** तथा जो शरीरों में चेतना है वह जीव शक्ति भी मुझे ही जानो । **'क्षेत्रज्ञं चापि माम् विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत' गीता १३/२ ।** अब कहाँ मन है और संसार है ? आप ही सागर लहरा रहा है । लहरे जा रही है जाती दिखाई पड़ रही है तो भी वे कहां जा रही है सागरसे बाहर ? कहीं नहीं । जल ही तो है न लहर है न सागर । इसी प्रकार एक मैं ही संसार रूपी लहर तरंग सब और भास रही है । मन भी मैं, संसार भी मैं, जीव भी मैं तो मैं ही का संसार सागर नाम पड़ गया । यहां मैं अद्वितीय आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं । यदि संसार है, मन है तो मैं ही हूँ ।

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं रसयते, तदितर इतरं श्रृणोति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति ।

जब तक जीव के मन में एक अद्वितीय ब्रह्म का बोध नहीं होता है तभी तक इसे द्वैत सा प्रतीत होता है । तभी वह अन्य मान उसे देखने, सूंघने, स्पर्श करने की इच्छा करता है ।

यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्, तत्केन कं जिघ्रेत, तत्केन कं रसयेत तत्केन कं भिवदेत, तत्केन कं श्रुणुयात, तत्केन कं मन्वीत, तत्केन कं विजानीयात् येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् ।

जब अखण्ड परमात्म सत्ता का मैं रूप से बोध हो जाता है कि यहां मुझ ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है वहाँ वह किसको देखे , सूंघे, रसले, कहे, छूवे एवं जाने ? जिसके द्वारा इस समस्त दृश्य रूप संसार को जाना जाता है उसे भला किसके द्वारा जाने ?

नदी को बांध द्वारा रोका तो जा सकता है किन्तु स्थिर तो तभी हो सकेगी जब नदी सागर में मिलेगी तब इसकी चंचलता, नाम, रूप सब एकमात्र सागर हो ठहर जायगी । फिर नदी नहीं, सागर भी नहीं मात्र जल ही जल सर्वत्र एक मात्र है । इसी तरह मन स्थिर तो तभी होगा जब इसे मैं आनन्द सागर में ओत-प्रोत कर दिया जाय, मिला लिया जाय । अपने जाति में, मैं की जाति में रखलिया जाय । यह उपद्रव तो तभी करता है जब इसे मैं से अपने से बाहर की मान्यता दे दी जाती है । बच्चेको मां की गोद चाहिये । यदि गोद से अलग कर दिया तो बच्चा उपद्रव शुरु कर देगा, कोई काम नहीं होने देगा रो-रो कर परेशान कर देगा ।

यदि तुम अपने को संसारी जीव मानते हो तो मन को रोकने के साधन करो और यदि अपने को आत्मा जानते हो कुछ भी साधन मत करो । क्योंकि आत्मा ही है, मन नाम की कोई चीज है ही नहीं । किसी भी प्रकार की साधना करना असत मन को सत्ता देनाा है । कुछ भी अपने आत्मा को मान लेना, आत्मा को मन मानना है । मन की उत्पत्ति कर लेना है । जीव कहो, मन कहो, संसार कहो एक ही बात है ।

मन माया प्रकृति जगत, चार नाम इक रूप ।
तब लग ये साचे लगे, नहिं जाना निज रूप ।।

मन के अभाव में संसार का अभाव है और मन के उदय में संसार प्रपंच का उदय है, चंचलता का नाम मन है । चंचलता रहित अवस्था केवल मैं आत्मा ही है । गहरी नींद में मन मैं रूप हो जाता है, बड़ा सुख का अनुभव करता है, तब संसार नाम की कोई वस्तु गहरी नींद में नहीं दिखाई पड़ती है । वहां यह मन मुझ आनन्द सिन्धु में डुब जाता है । तब वह आत्मा ही है । शांत लहर तो जल ही है । इसी तरह जब तक संकल्प–विकल्प रूपी लहर है तभी तक मन है इससे रहित अवस्था ही आत्मा, मैं है । अपने आपका ही दूसरा नाम मन है ।

''सर्व ब्रह्म है'', ''अहमेवेदं सर्वम्'' मेरे सिवा अन्य कुछ भी नहीं, इस ज्ञान अग्नि में मन की कल्पना को भस्म कर डालो । **साधन से मन की चंचलता बढ़ जाती है और आत्मा मानने से मन की खटपट समाप्त हो जाती है** । साधन करने वाला मन ही है तो वह शांस कैसे हो सकेगा ? कभी नहीं होगा ।

''मन को रोकने के लिये कुछ न करना यही अभ्यास है और इसी को अनभ्यास कहते है ।''

यदि मन को जिन्दा रखना है तो कुछ न कुछ उसे साधन में जोड़ रखो और यदि मन मो मारना है तो कोई साधन मत करो । तुम्हारे दैनिक सभी महत्व पूर्ण कार्य मन के बिना वश किये अनभ्यास में ही हो रहे हैं । विद्यार्थी डिग्री प्राप्त कर लेते हैं, सर्जन आप्रेशन करलेते हैं ।

सुनना, देखना, गाना, बजाना, आफिस्, कोर्ट आदि सभी कार्य अनभ्यास से हो रहे हैं । अनभ्यास की स्थिति में प्रपंचाभाव का अनुभव होता है । और प्रपंच का दर्शन अभ्यास की स्थिति में होता

है । अनभ्यास में सभी व्यवहार होते हुए भी नहीं होते हैं और अभ्यास में व्यवहार नहीं होते हुए भी होते हुए ऐसे हो जाते हैं ।

स्वरूप स्थिति अनभ्यास का फल है । अभिमान रहित बालक के समान सब कार्य व्यवहार करते रहना, यही अनभ्यास का स्वरूप है ।

बालक हंसता, रोता, खाता, पीता, खेलता, लड़ाई करता है पर उसका उन क्रियाओं पर अभिमान नहीं रहता । इसी प्रकार प्रारब्ध से राज्य मिल जाय या भिखारी हो जाय पर हृदय पर ग्लानि या हर्ष का भाव न रहे ।

उत्तम पुरुष ''मैं'' के बिना किसी भी देश,काल एवं वस्तु की सिद्धि नहीं होती है इसलिये मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है । समस्त चराचर की सिद्धि मैं के बिना करलें तब तो चराचर जगत है और यदि ''मैं'' के बिना पत्ता भी अपने को सिद्ध नहीं कर पाता है तब चराचर नहीं ''मैं'' ही हूँ । जिसे अज्ञान काल में मन, संसार जगतादि कहा जाता था वह मैं ही चराचर जगत रूप फैला हुआ हूँ । इस विवेकी बुद्धि से मन मुझ आत्मा में विलीन हो गया । यहि मन पर विजय पाना है या मन को वश करना है ।

किसी भी विषय के भोग के समय ठीक अनुभव करते समय थोड़ा भी आगे पीछे नहीं तब क्या यह भान रहता है कि मैं अमुक हूँ, यह विषय है और मैं यह विषय भोग रहा हूँ ? नहीं तब इन तीनों का अभाव रहता है केवल विषय का अनुभव रहता है । इस अवस्था में न कर्त्ता न कर्म और न क्रिया है त्रिपुटी का अभाव है उस समय केवल अनुभव ही अनुभव है । ''केवलानुभवानन्द'' यह अवस्था आत्मा स्वरूप ही है । यही ''मैं'' आत्मा हूँ ।

चौदह इन्द्रियों में मन ही एक मात्र प्रमुख इन्द्रिय हैं । शेष दस इन्द्रियां तों मन के बाहर जाने के द्वार है । मन उन द्वारों से निकल कर देखने की क्रिया करता है तब उसकी नाम चक्षु, सुनने की क्रिया करता है तब मनका का नाम कर्ण है । अनेक इन्द्रियां नहीं है । अनेकतो मन के बाहर विषय तक जाने आने के द्वारा है । जिस इन्द्रिय द्वार से मन बाहर गया उसी इन्द्रिय द्वारा से वह भीतर लौटता है तभी उस विषय का ज्ञान होता है । एक समय में अनेक विषय का ज्ञान होती तो इन्द्रियां अनेक मानली जाती । किन्तु इन्द्रियां मन एक ही है वह एक समय दो इन्द्रियों का काम नहीं करता है । यदि मन एक इन्द्रिय द्वार से बाहर जाये जिसे चछु कहते हैं फिर वह मन जब रूप को देख नेत्र द्वारसे न लौट अन्य द्वार से जिसे कर्णादि के होते है उन द्वार से लौटे वह रूप की त्रिपुटी नहीं बनेगी । अतः न मन अनेक काम एक समय करता है और न इन्द्रियां अनेक है ।

मन को माना ''मै'' ने और मन से माना जगत को । मन का स्थूल शरीर और मुझ आत्मा का स्थूल ूप मन है । मन को जान लिया मैं नहीं तो शरीर नहीं और ''मैं'' को जनालिया तो मन नहीं । जिस प्रकार स्वर्ण ज्ञान में अलंकार का अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार 'मैं' के ज्ञान में मन का अस्तित्व नहीं अपने आपको जानो तो मन नहीं और मन को जानो तो मन नहीं मैं ही हूँ जल को जाना तो लहर नहीं और लहर को जाना तो लहर नहीं जल ही है । जीश देश में यह मन मन है और आत्म देश में यह मन 'मैं' आत्मा ही है ।

प्राणी मात्र का लक्ष्य एक है वह है नित्यानन्द की प्राप्ति । आत्मा सब जीवों की एक है, शरीर भी पंचभूत मात्र होने से सब प्राणी के शरीर एक ही है और मन भी एक ही है । इस तरह एक ही है जो सर्व है इस अनुभूति में सर्व न रहा, एक मैं ही शेष रहा । जब सर्व न रहा तो एक भी नहीं रहा सर्व की अपेक्षा से तो एक कहा गया था, तब क्या

रहा ? बस जो रहा वह न सर्व है न एक है । जो है, सो है जैसा है वैसा है ।

श्रुति कहती है कि – अभी उत्पन्न कन्या गर्भवती हो सकती हो, नपुन्सक स्त्री भोग सुख प्राप्त कर सकता हो, बालूरेत से तैल निकल सकता हो, गधे के सींग निकल सकते हो, मरुस्थल में जलाशय हो सकता हो तब तो मन है और यदि उपरोक्त वस्तुएं नहीं हो सकती है तब मन नहीं है 'मैं' आत्मा ही हूँ ।

अस्तित्व आत्मा मैं को शरीर मानना यह स्वप्न है और शरीर के धर्मों को अपने आप में, आत्मा में मानना यह सपने के अन्दर सपना है । पहले मैं शरीर हूँ, यह भ्रान्त धारणा पैदा की, यह हुआ स्वप्न फिर इस मान्यता के बाद शरीर के समस्त धर्मों को अपने में माना कि मैं स्त्री, मैं पुरुष, मैं बालक, मैं हिन्दु, मैं ब्राह्मण, मैं ब्रह्मचारी, मैं पिता, मैं माता, मैं गृहस्थ, मैं संन्यासी आदि मानना यह हुआ स्पप्नान्तर । मैं को मैं रूप जानना आत्मरूप जानना ही यथार्थ बोध है ।

मैं संसारी जीव हूँ इस मान्यता में अस्तित्व को याने आत्मा को जीव माना यह हुआ स्वप्न एवं इसके बाद मैं आता हूँ, जाता हूँ, दुःखी-सुखी हूँ, कर्ता-भोक्ता हूँ, पापी-धर्मात्मा हूँ यह हुआ स्वप्नान्तर । यह स्वप्न एवं स्वप्नान्तर दोनों मोह की नींद है और ब्रह्म मानकर द्रष्टा, साक्षी अखण्ड, असंग, निरन्जन मानना यह बुद्धि उपाधि जन्य विकार है । इस रात्रि से जगाने हेतु सन्त जीव को ललकार कर कहते हैं अनन्त नाम रूपों में अभिव्यक्त श्रोतागणों !

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

हे अनादिकाल से अविद्या की घोर निन्द्रा में सोने वाले भव्य जीवों ! उठो ! एवं स्व स्वरूप आत्मा में जागो । उसके लिये शिघ्रता

से किसी श्रेष्ठ महापुरुष की शरण में जाकर अपने कल्याण स्वरूप नित्य प्राप्त आत्मा का बोध प्राप्त करो । मानव जीवन का यही परम लक्ष्य है

यानिशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्या जाग्रति भूतानि सानिशापश्यतो मुने ।। गीता २/६९

किस रात्रि में, कौन योगी जागते हैं ? जो परमार्थी है और जिसने प्रपंच का त्याग कर दिया है । परम+अर्थि = परमार्थी । तो परम अर्थात् आत्मा के अलावा जिसकी दृष्टि में अन्य कुछ नहीं है । वासुदेव सर्वम्, नारायणे वेदं सर्वं, आत्मैवेदं सर्वम्, ब्रह्मैवेदं सर्वम् में जो रत है वह परमार्थी है जिसने देह संघात एवं पंच विषय रूप जगत् को अभाव रूप जान लिया है तब वह जीव जाग गया है ऐसा जानना चाहिये ।

द्वे पदे बन्ध मोक्षाय निर्ममेति ममेति च ।
मेमति बन्धते जन्तुनिर्ममति विमुच्यते ।। २/४३ वराह उप.

ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति

जीवब्रह्म को जानकर ब्रह्म हो जाता है । अरे भैया ! जानने से पुर्व भी वह ब्रह्म ही रहता है । झूठी मान्यताओं को अपने असंग आत्मा याने अपने मैं पर आरोपित करलिया और स्वयं उससे ढका था जैसे रेशम बनाने वाले कीड़े की तरह। जब उन समस्त मिथ्या अहंकारों का त्याग कर दिया तो रह गया वह एक का एक जो मान्यता से ढकने के पूर्व ही था 'मैं' आत्मा राम । जब जानने के पहले भी राम था तब जाना भी किसको ? किसी को नहीं । न कुछ जाना ,न कुछ जनाया, न कुछ जानने की चिज है ।

जो कहता है मैंने उसे जाना है, उसने नहीं जाना है यह कहना भी तो द्वैत ही सिद्ध कर रहा है । क्योंकि जानना दो में होता है एक में नहीं । जब एक ही अस्तित्व मैं आत्मा है तब दूसरे के अभाव में कौन किसको जानेगा ?

अनादि काल से यह हंस जीव संसार में भ्रमित होता हुआ दुःख पा रहा है । जब यह जीव अपने को शरीर से भिन्न करके आत्मा के साथ एकता का अनुभव करता है तब यह जीव संज्ञा का परित्याग करके समस्त बन्धनों से मुक्त होकर अमृत्य पद (कैवल्य पद) को प्राप्त हो जाता है । माया ढक्कन उठाते ही मैं का मैं ही रह जाता है । जीव की हृदय ग्रन्थि छूट जाती है सारे संशय नष्ट हो जाते है ; इसके अनादि के सभी संचित् कर्म ज्ञानाग्नि में क्षीण हो जाते हैं । और यह जीव आवागमन चक्र से छूट जाता है ।

जाति पांति धन धरम बढ़ाई, प्रियपरिवार सदन समुदाई ।
सब तजि तुमहि रहई उर लाई, तेहिके ह्रदय बसहु रघुराई ।

प्रायः कथावाचक पुराणों की ललजाने वाली मधुर कथाओं का तो पान कराते हैं किन्तु कथा के सार भाग उद्देश्य को नहीं बताते हैं । कड़ी दवा के लिये मिठाई में मिला खिलाना है न कि मिठाई ।

''यावानहम्'' मैं जैसा हूँ यह रह जाय यही राम प्रेम है आत्म तत्त्व के बोध का यही स्वरूप है । आज को पहिले ''मैं'' क्याथा । अभी क्या हूँ, आगे क्या रहुँगा ? इन तीनों बातो की स्मृति निवृत्ति हो जाय अन्य-ताभाब हो जाय यही पूण्य बोध है । जिस प्रकार नदियों के समुद्र में मिल जाने बाद यह स्मृति नहीं रहती कि आज के पहले हम अमुक नदी थी ।

◆◆◆◆◆◆◆

आत्मनिष्ठ

''मैं'' ब्रह्म हूँ, यह ज्ञान बुद्धि द्वारा जाना जाता है, और ''मैं'' हूँ यह आत्मा द्वारा ग्रहण किया जाता है । जहां मैं को कुछ माना यही ज्ञानी का योग भ्रष्टता है, प्रमाद है, मृत्यु है । अतः स्वप्न में भी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का किसी प्रकार का चमत्कार देखकर भी अपने मन में यह भाव नहीं आना चाहिये कि मैं भी ऐसा करलेता तो, कर सकता होता तो कितना अच्छा होता किन्तु मैं तो ऐसा नहीं कर सकूंगा, मेरे में ऐसी सामर्थ्य नहीं है । जहाँ ऐसा भाव जाग्रत हुआ तो यह जीव देश की बात हो गई वह मैं आत्मा अखण्ड सर्व हूँ इस निष्ठा से गिर गया । आत्मनिष्ठा से उसका पतन हो गया, यही मृत्यु है , यही योग भ्रष्ट है ।

आत्म नैष्ठिक कठिन से कठिन आपत्ति में आत्म निष्ठा से डाँवांडोल नहीं होता यही आत्म निष्ठा है ।

संसार वस्तु अप्राप्ति की प्राप्ति का नाम योग है । प्राप्त की रक्षा को क्षेम कहते है । आत्मा 'मैं' प्राप्तकी प्राप्ति का नाम क्षेम है ।

जीव को इच्छा होती है कि मैं परमात्मा को जानूं परन्तु जब जीव 'मैं' है और 'मैं'आत्मा है और आत्मा परमात्मा है तो क्या परमात्मा को भी अपने को जानने की इच्छा होगी ? कभी नहीं होगी ।

जीववादी मैं अपने को जीव मानता हूँ।
ब्रह्मवादी 'मैं' अपने को ब्रह्म मानता हूँ।

इन दोनों की मान्यता व्यष्टि समष्टि को छोड़ दो, जीव व ब्रह्म को छोड़ दो तो दोनों में रह गया 'मैं' का 'मैं' ही जिसमें कोई भेद नही

हैं। घट, मठ, उपाधि से ही घटाकाश, मठाकाश का भेट है । घट, मठ उपाधि से रहित तो आकाश एक ही हैं। प्रकाश और अन्धकार दोनों को देखने वाला 'मैं' स्वयं प्रकाश है । परम प्रकाश है ।

संत विशुद्ध मिल हिं परि तेही, चितवाहि राम कृपा करि जेही ।

अज्ञानी व्यक्ति कभी निष्काम कर्म नहीं कर सकेगा। निष्काम कर्म तो बोधबान आत्म निष्ठ द्वारा ही हो सकेगा जिसे कुछ पाना शेष नहीं है ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मनृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।। गीता ३/१७

मनसे यदि पूछा जाय किन्तु कौन है तो वह कहेगा 'मैं' मन हूँ तब बिना 'मैं' के मन है तब तो वह है और यदि बिना 'मैं' के अपनी सिद्धि नहीं कर सकता तब मन है नहीं 'मैं' हूँ जिसे मन कहा है । इस तरह मन मुझसे भिन्न नहीं जैसे जल से तरंग भिन्न नहीं होती ।

संसार मिथ्या है इसलिये क्रिया करने से मिलता है ।

आत्मा सत्य है इसलिये बिना कुछ किये जानने मात्र से मिलता है । अकृत्य नित्य वस्तु आत्मा है इसलिये बिना कुछ किये सबको प्राप्त है।

आभुषण विकल्प है, मन विकल्पक है, स्वर्ण आधार है ।

जगत विकल्प है, मन विकल्पक है, और 'मैं' आत्मा आधार है ।

मैंने माना मनको, मन ने माना सारे जगत् प्रपंचको, मनने प्रपंच किस को माना ? मैं आत्मा आधार को । क्योंकि यहाँ एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । अन्य मानना ही मृत्यु से मृत्यु को पाना है अर्थात् दुःख को प्राप्त करना है । मन को ढुंढने पर मैं के अतिरिक्त कुछ नहीं ।

जबतक विकल्पों के मूल कारण मन का त्याग आत्म निष्ठा के रूप में नहीं करेंगे, तब तक मिथ्या नाम, रूप विकल्पों का अभाव नहीं होगा । मन के ग्रहण में सबका एवं मन के त्याग में सर्व का त्याग है ।

मैं को जब किसी उपाधि के साथ जोड़ दिया तो यही मन का पैदा होना है और जब मैं को कुछ नहीं माना तब 'मैं' का 'मैं' है यही 'मैं' का मैं होना ही मन का अमन होना है या मनो नाश है ।

मन जब कुछ नया भाव मान लेता है तो वह ब्रह्मा हो जाता है । मन जब उस माने हुए का चिन्तन करता रहता है तो वह विष्णु हो जाता है । मन जब उस माने हुए का त्याग करदेता है तो वही मन शंकर हो जाता है । मन के उपरोक्त तीनों अभिमान का आधार भूत 'मैं' हूँ इस प्रकार इन तीनों की उत्पत्ति मुझ आत्मा 'मैं' से ही हुई है ।

मैं देह हूँ, मैं जीव हूँ, मैं ब्रह्म हूँ यह तीनों प्रकार के बोध वासना सहित है कुछ मैं को मानकर है किन्तु 'मैं' को 'मैं' ही हूँ ऐसा जानना वासना रहित बोध है ।

उपजहि जासुअंशतेनाना, विष्णु विरंची शंभु भगवाना ।
उपजहि जासुअशं गुणखानी, अगणित उमा रमा ब्रह्माणी ।।

जिस तरह गाढ़ निद्रा में किसी प्रकार वासना रहित मैं अकेला हूँ वैसा अपने को जाग्रत में जानना जीवन मुक्ति अवस्था है ।

निवृत्ति में राग नहीं, प्रवृति में द्वेष नहीं यही स्थित प्रज्ञता कहलाती है । अभाली पद आत्मनिष्ठ के लक्षण है । जब प्रवृति में भी 'मैं' निवृत्ति में भी 'मैं' तब किससे राग करें किससे द्वेष करें । प्रवृत्ति-निवृत्ति की सिद्धि मुझ आत्मा से ही है ।

मन प्रथम विषयों को मानता है । विषय मानते ही उसे भोगने की इच्छा करता है और तुरन्त इन्द्रियों का निर्माण हो जाता है ।

गन्ध विषय को भोगने के लिये 'मैं' घ्राण इन्द्रिय होजाता हूँ, रूप विषय को भोगने 'मैं' चक्षु इन्द्रिय हो जाता हूँ। शब्द विषयों को भोगने हेतु मैं श्रोत्र रूप होकर ही उन्हें भोगता हूँ। विषय काल में विषयों से मेरी अभिन्नता रहती है । विषयों से भिन्न रह कर विषय भोगा ही नहीं जासकाता ।

मुझ आत्मा में न विषय है न इन्द्रियां है क्योंकि मेरे बिना न इन्द्रियों की सिद्धि है न विषयों की सिद्धि है । विषय व इन्द्रियां में ही हूँ सर्व 'मैं' हूँ। सर्व मुझसे भिन्न नहीं ।

अनादि काल के अध्यास से यह समस्त नाम, रूप प्रपंच भास रहा था उस अज्ञानावस्था के अध्यास को मिटाने हेतु 'मैं' सर्व हूँ इस भावना को जाग्रत करना आवश्यक है ।

स्वरूप के अज्ञान में जगत् प्रपंच भासता है । स्वरूप ज्ञान से इस जगत् प्रपंच का अत्यन्त अभाव है । अतः सर्व मैं हूँ इस आत्म तत्व भाव में दृढ़ता होनी चाहिये ।

ज्ञानीके लिये खाना, पीना, सोना, जागना , रोना, हंसना, कुछ निषेध नहीं है । गीता ५/८९ में स्थितप्रज्ञ द्वारा समस्त क्रियाएं होते रहने पर भी वह ऐसा मानता रहता है कि मैं कुछ नहीं करता । इन्द्रियां ही अपने अपने विषयों में बर्तती है ।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत यत्त्ववित् ।

पश्यञ्शृण्वन्स्पृशाञ्जिघ्रन्नश्रनाच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।

इन्द्रियाणीन्द्रिर्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।

बड़े-बड़े शास्त्री, पण्डित, ज्ञानी इन छोटी बातों में ही अटके पड़े रहते हैं की ज्ञानी को ऐसा नहीं करना चाहिये । वे ज्ञान का वास्तविक

स्वरूप ही नहीं समझ पाये हैं । इसलिये उनका मन इन छोटे -छोटे उलझनों मै फंसा रहता है एवं सर्व मैं हूँ इस महान आशय से वंचित् रह जाते हैं ।

मैं आत्मा पुण्य-पाप, सुख दुःख बन्ध-मोक्ष मान-अपमान निंदा-स्तुति, पवित्र-अपवित्र सर्व से पुर्ण हूँ यही मेरी व्यापकता, महानता, असीमता का स्वरूप है ।

जिससे माना जाय वह चैतन्य है, जिसे माना जाय वह जड़ है 'आकाश' माना गया वह जड़ है । यह मुझसे माना गया इसलिये चैतन्य मैं है, क्योंकि यहाँ मुझ एक आत्म चैतन्य से भिन्न किंचित् भी अन्य नहीं है ।

बाहर त्याग-भीतर विषयासक्ति, दिखावा ढोंग पाखण्ड है । और भीतर त्याग बाहर ग्रहण होना यह आसक्ति नहीं है, बन्धन रूप नहीं है ? राग, द्वेष से रहित अन्तःकरण वाला ज्ञानी स्वभावानुसार यदि इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करता है तो दूसरों की दृष्टि में भोग करता हुआ प्रतीत होने पर भी वह आत्म निष्ठ घर, बाहर, महल, जंगल में समान शान्ति को प्राप्त होता है । आत्म नैष्ठिक की दृष्टि ब्रह्माकार, आत्माकार, स्वरूपाकार रहती है । अज्ञानी की दृष्टि जगदाकार रहती है । ग्राहक की दृष्टि अलंकार की है, सोनार की दृष्टि स्वर्णाकर होती है । आत्मज्ञान हो जाने पर जगत बाध, अभाव रूप, सत्ता रहित हो जाता है किन्तु अज्ञानी की ही तरह व्यवहार करता प्रतीत होता है । अस्तित्व को न जानकर कुछ अन्य मान लेना मोह रात्रि है । इसमें संसारी जीव सोते हैं । रस्सी को सर्प जानना मोह निशा है । रस्सी को रस्सी जानना जाग जाना है ।

कर्मकाण्डी अज्ञानी अस्तित्व को अर्थात् मैं को मैं आत्मा न जान मैं शरीर हूँ ऐसा समझता है । मैं जन्मता मरता हूँ, मैं बालक, युवा, बृद्ध हूँ, मैं अन्धा, लंगड़ा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, ब्रह्मचारी, संन्यासी हूँ। मैं

पिता, माता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री हूँ मैं काका, भतिजा, चाचा, मौसा, मैासी, मामा, मामी हूँ। अपने मैं असंग आत्मा को यह सब मानना मोह निशा है ।

अस्तित्व 'मैं' आत्मा को जीव मानना कि 'मैं' तुच्छ जीव हूँ, अज्ञानी हूँ, सीमीत हूँ, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही हूँ, सुखी-दुःखी, पापी-धर्मात्मा हूँ, कर्ता, भोक्ता हूँ ऐसा मानना यह उपासको का मोह निशा है ।

अस्तित्व 'मैं' आत्मा को 'मैं' का 'मैं' ज्यों का त्यों जैसा का जैसा मानकर ब्रह्म मानना, और यह समझना कि मैं ज्ञानी हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं ब्रह्म हूँ और सब जीव अज्ञानी बद्ध एवं दुःखी है किन्तु मैं सच्चिदानन्द हूँ यह ज्ञानी की मोह निशा का स्वप्न है।

उपरोक्त कर्मकाण्डी, उपासक एवं ज्ञानी तीनों की मान्यता जगत् की सत्ता पर ही जोर देती है । जगत् के प्रति ही भाव है, अतः यह सब स्वप्न है । असत्य और मिथ्या है । जो यथार्थ में जैसा है उसे वैसा न बताकर अन्य रूप बताना धोखा है ।

अस्तित्व अव्यक्त रूप में 'है' है और व्यक्त रूप में 'मैं' रूप है । अस्तित्व 'मैं' को शरीर मानना, जीव मानना, ब्रह्म मानना यह कर्मी, उपासक व ज्ञानी इन तीनों का अपराध है । अस्तित्व 'मैं' आत्मा को 'मैं' का मैं रूप जानना ही तत्त्वदृष्टि है ।

घटावभासकः भानुर्घटनाशे न नश्यति ।
देहावभासकः साक्षी देह नाशे न नश्यति ।।

।। ९८ ।। आत्मपबोध ३४,

घट का प्रकाशक सूर्य घट नाश से नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार देह का प्रकाशक साक्षी आत्मा देह के नष्ट होने से नष्ट नहीं होता ।

मैं देह, मेरा देह यह भ्रान्त ज्ञान बन्धन रूप है ।
मैं देह नहीं, मेरा देह नहीं यह ज्ञान मोक्षप्रद है ।

जब देह नहीं जीव नहीं तो बन्ध और मोक्ष भी नहीं, केवल मैं सर्व हूँ । सर्व भी नहीं, मैं भी नहीं, केवल हूँ । मैं भी तू की अपेक्षा से है, हूँ भी नहीं केवल है । देह को आत्मा जाने बिना देहाभिमान का त्याग असम्भव है ।

जिसकी दृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, राम, कृष्णादि बड़े नहीं एवं निर्धन गलित कुष्ण रोगी तनिक भी छोटा नहीं ऐसी जिसकी निष्ठा हो वह आत्म निष्ठ आत्म नैष्ठिक है ।

आत्मवित होना अर्थात आत्मा को जानलेना यह छोटी बात है किन्तु आत्म निष्ठ होना बड़ी दुर्लभ बात है । आत्मनिष्ठ हर अवस्था में परमशान्त है ।

ऐसे आत्म निष्ठ महात्माओं के चरणों में लक्ष्मी, सिद्धियां रहकर अपने को कृतार्थ मानते हैं । अज्ञानी लक्ष्मी के चरणों में सर रगड़ते रहते हैं । अतः आत्मनिष्ठ होओ । कामनाओं से उठे एबं आत्मनिष्ठा मे जागो 'उत्तिष्ठित जाग्रत' 'उठोजागो अपने आपको 'मैं' आत्मा जानकर आत्म पद पर स्थित होओ । मैं अमुक हूँ, मैं यह हूँ ऐसा जानना यह अज्ञानी है और मैं 'मैं' हूँ यह जानना बोधवान है ।

हर एक विषय के अनुभव काल मैं ठीक उसी समय थोड़ा पहले या थोड़ा बाद में नहीं । क्या यह विषय भोगने वाले को भान रहता कि मैं अमुक हूँ एवं अमुक विषय को भोग रहा हूँ? नहीं । विषयों के अनुभव करते हुए विषयानुभव न हो कि मैं यह विषय अनुभव कर रहा हूँ, इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं । यही सहजावस्था, सहज समाधि है । यही सहजानन्द है, जहां विषय का भान नहीं केवल आनन्द ही रहता है केवल मैं ही रहता है, जब मैं ही मैं के सिवा कुछ नहीं तब विषय कहाँ और

अनुभव कहाँ, अनुभव कौन करेगा ? यहां किंचित् भी द्वैत नहीं है एक मात्र 'मैं' ही मैं हूँ। कोई भी स्थिति एक रस नहीं रहती एक रस तो 'मैं' हूँ।

मैं हूँ यह निर्णय ही संसार वृक्ष को जड़ मूल से उखाड़ फेंकना है । 'मैं' हूँ यह ही ज्ञान खड़ग् संसार वृक्ष को काटने का साधन है ।

''है'' के बिना शरीर है तब तो शरीर है और यदि ''है'' के बिना शरीर नहीं तो फिर ''है'' ही है । ''है'' का ही नाम शरीर है ।

सिनेमा नकली को दूरसे देखने का मजा है सर्कस जादु समीप से देखने का मजा है । संसार देखने हैं दूर से, क्योंकि नकली खेल है आत्मा को जानना है तो पाससे, पास क्योंकि असली है ।

योग वियोग भोग भल मन्दा, हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ।
जन्म मरण जंह लगि जग जालु, सम्पत्ति विपत्ति कर्म अरु कालु ।।

धरणि धाम धन पुर परिवारू, स्वर्ग नरक जहं लगि व्यवहारु ।
देखिय सुनिय मुनिय ''मन माहि'' मोह मुल परमारथ नाही ।।

यह सब मनोराज्य है । बिना आत्म बोधके इस जंजाल से मुक्त नहीं हो सकेंगे । जन्म-मृत्यु है ही नहीं । यह विचार ही पुनर्जन्म का न होना है और इस नाम रूप को सत्य जानना ही तो पुनर्जन्म है ।

एक काजी ने मन्सुर के शरीर की जली हुई 'भस्म' शीशी में भरकर रखली । एक बार उसकी जवान कुंवारी लड़की ने दवा समझ उस शीशी को खोल सुंघने लगी कि यह क्या दवा है । तब थोड़ी सी भस्म उसके नाकसे हो गर्भ में चली गई । गर्भवती होकर बच्चा दिया । उसका नाम उसने शम्सतवरेज रखा । वह भी बड़ा हो कर मन्सुर की तरह अनलहक का उद्घोष करता था उसे भी लोग काफिर समझते थे व घृणा करते थे । इसी मुलतान नगर के राजा का एकलोता पुत्र गंभीर रूप से बीमार पड़ मर गया था । किसी उपचार से ठीक नहीं हुआ तो राजा ने

कहा या तो तुम सभी मुल्ला, काजी मिलकर प्रार्थना कर मेरे बच्चे को स्वस्थ करो, जीवित करो अन्यथा तुम्हारे सभी मजहबी ग्रन्थ मसिजद आदि नष्ट कर दूंगा । लोगों ने सलाह दी महाराजा ! काजी साहब के लड़के शम्सतवरेज को यह काम दिया जाय वह शायद करलेगा । वह अपने को खुदा कहता है यदि जीवित न करसके तो उसे धर्म द्रोही की सजा मिलनी चाहिये ।

शम्सतवरेज को बुलाया गया । उसने उस मृत लड़के को छड़ी से मार कर कहा ऐ खुदा के बच्चे ! ''कुम्बेजल्लिलाह'' ''कुम्बे जलिल्लाह'', ''कुम्बे जलिल्लाह'' खुदा के नाम पर उठ बैठो, किन्तु तीन बार उससे कहा गया तबभी नहीं उठा । तब चौथी बार कहा ''कुम्बे जलि'' अर्थात् मेरे नाम पर उठ जा ! वह उठ गया । इतना प्रत्यक्ष होने पर भी मुल्ला काजी एवं लोगों ने उसे काफिर धर्मद्राही करार दे अपनी खाल खिचवाने की राजा से आज्ञा दिलादि । इस पर शम्सतवरेज ने कहा मैं स्वयं अपनी खाल उतार देता हूँ और कपड़े उतारने की तरह सरके मध्य भाग से चीर खाल उतारदि रक्त बहने लगा व नगर से बाहर चला गया । भूख लगी तो कसाई से कच्चा मांस ले लिया एवं पकाने हेतु अग्नि नहीं मिली तो सूर्य से कहा ऐ हमनाम थोड़ा नीचे आजा मुझे मांस पकाना है । सूर्य थोड़ा नीचे आया उसका मांस पकगया इसने खाया कुछ समय बाद मर गया । सूर्य ताप से सारे गनैर में आग लग गई । इस सत्य मार्ग पर चलने वालों को बड़ी तपस्या से गुजरना पड़ता है ।

यह विचार में मैं और ब्रह्म दो सिद्ध होते हैं ।

''मैं'' ब्रह्म हूँ तब 'मैं' कौन हूँ और 'ब्रह्म' कौन है ? यह जब निर्णय किसी सद्गुरु की कृपा द्वारा हो जाता है इसी को ग्रन्थि भेदन, खोलना कहा है ।

'मैं' ब्रह्म हूँ यह ज्ञान भावनात्मक है तो यह साधना जन्य है जो फिर विस्मरण हो जायागा । परन्तु 'मैं' हूँ यह दृढ़ ज्ञान भावनातीत है तो यही कृपाजन्य है, सद्गुरु कृपा का फल है । इसे ही सहजावस्था कहा है।

मानने व न मानने में जो रहे, वह मैं हूँ। विकल्प से विपल्पक भिन्न नहीं होता । जीव की मान्यता किस पर है ? किसको जीव मानता है ? मैं को तब 'मैं' ही हूँ जिसे जीव कहते हैं । 'मैं' के बिना, न ईश्वर, न जीव, न कोई ब्रह्म है और न प्रकृति है । सर्वाधार मैं ही हूँ ।

जीव व ईश्वर को तौलने वाला दोनों से अलग 'मैं' हूँ मैं इन दोनों से बाहर न रहूँ तो इन्हें तौलेगा कौन कि यह अल्पज्ञ है और यह सर्वज्ञ है ।

''मैं'' अपने को सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि से निकाल लूँ तो यह सूर्य, चन्द्र, अग्नि. पृथ्वि सब सताहीन हो जावेंगे । मेरे बिना इन सभी की सत्ता नहीं है, सिद्धि नहीं है । ये सब मुझसे भिन्न सत्ता नहीं रखते, मेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित होते है । मेरे बिना सब शुन्य है ।

यह कैसा आंख मिचौनी का खेल है कि सर्व जीवों का वह परमात्मा मैं होते हुए भी 'मैं' की तलाश में दुनियाँ इधर-उधर मारे-मारे फिर रही है । ढुंढने वाला भी मैं और जिसे ढुंढा जा रहा है वह भी मैं । जब दोनों 'मैं' । तो ढुंढने का विकल्प भी क्यों ? मैं होकर मैं को ढुंढा तो मैं सदा पाया हुआ ही है, कभी खोया ही नहीं, दूर गया ही नहीं । जब मैं को कुछ मानकर ढुंढा जाय अन्य मानकर ढुंढा जाय तो मैं कैसे मिले **'कस्तुरी कुण्डल बसै'** ।

जब तू भी 'मैं' और मैं भी मैं तो क्या दो मैं है ? नहीं । मैं ही मैं है । जब मैं ही मैं है तो ढुंढने का साधन किसके लिये।

मैं को कुछ मानना, अमुक मानना छोड़ दें तो मैं की आखरी मन्जिल है बस ढुंढना खतम । मैं कि प्रति अमुक भाव गया ऐसा भाव गया कि 'मैं' मिलगया ।

मैं ब्रह्म हूँ यह जो कहा जा रहा है, यह तुम ब्रह्म को जानकर कह रहे हो या मानकर ? मानकर कह रहे हो तो वह ब्रह्म नहीं, वह मन की माया है असत्य है । यदि जानकर कहते हो तो भी वह ब्रह्म नहीं, क्योंकि ब्रह्म तुमसे भिन्न कब हुआ जिसको तुमने जाना । ब्रह्म तुमसे भिन्न है तो वह अखण्ड नहीं, यदि अभिन्न है तो जाना किसको ? क्योंकि जानना दो में होता है । मैं रूप होने से तुम ''द्रष्टे द्रष्टारं न पश्येत'' द्रष्टि के द्रष्टा को यह रूप, भिन्न रूप कभी नहीं देख सकोगे ।

यहां न मैं हूँ न तुम हो, न गुरु है, न वक्ता है, न श्रोता है, सर्व 'मैं' ही मैं आत्मसत्ता के अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है । जो कल्पना उठती है वह भी 'मैं' हूँ, मेरे सिवा अन्य कुछ नहीं । यहाँ मन कहाँ है ? जगत् कहां है ? यहां प्रपंच कहां है ? अपने आप मैं आत्मा ही तो सर्व और, सर्व रूप परिपुर्ण हूँ। मेरे सिवा अन्य कुछ नहीं ।

हे गार्गी !

पृथवी 'है' यह जो 'है' है यह पृथ्वी का 'है' है या मुझ आत्मा का है ? मुझ आत्मा का 'है'है । तब इस 'है' रूप में मै ही पृथ्वी में प्रवेश करता हूँ और समस्त चराचर को धारण करता हूँ। इस तरह 'है' रूप से मैं चराचर सर्व में प्रविष्ट हूँ।

जो पृथ्वी में स्थित होकर पृथ्वी के भीतर है जिसको पृथ्वी नहीं जानती । जिसका पृथ्वी शरीर है जो पृथ्वी के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । वही तू है ।

जो वायु में स्थिर रहकर, वायु के भीतर रहता है, वायु जिसे नहीं जानती, जिसका वायु शरीर है । जो वायु के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । वह तू है ।

जो आकाश में स्थित होकर, आकाश के भीतर रहता है, आकाश जिसे नहीं जानता, आकाश जिसका शरीर है जो आकाश के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है । वह तेरा आत्मा, अन्तर्यामी अमृत है । वह तू है ।

जो सब भूतों में स्थिर होकर सब भूतों के भीतर रहता है । जिसको सब भूत नहीं जानते, जिसके सब भूत शरीर है । जो सब भूतों के भीतर रहकर उन्हें नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । वह तू है ।

जो प्राण में स्थित होकर, प्राणके भीतर है । जिसको प्राण नहीं जानता, जिसका प्राण शरीर है जे प्राण के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । वह तू है ।

जो नेत्रों में स्थित होकर, नेत्र के भीतर है । जिसको नेत्र नहीं जानते, नेत्र जिसका शरीर है । जो नेत्र के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । वह तू है ।

जो श्रोत्र में स्थित होकर, श्रोत्र के भीतर रहताहै, श्रोत्र जिसे नहीं जानते, श्रोत्र जिसका शरीर है, श्रोत्र के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ।

जो मन में स्थित होकर, मन के भीतर रहता है, जिसे मन नहीं जानता, मन जिसका शरीर है, जो मन के भीतर रहकर उसे नियम में रखता है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ।

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा
नान्योऽतोऽस्ति श्रोत्रा नान्योऽतोऽस्ति मन्ता।
नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष
तात्माऽन्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्तम् ।।

बृहदा. ३.७-२३

अन्तर्यामी आत्मा के सिवाय किसी की देहमें कोई अन्य द्रष्टा नहीं हैं । इसके सिवाय दुसरा श्रोता नहीं है । इसके सिवाय कोई अन्य मन्ता नहीं है । इसके सिवाय अन्य कोई दूसरा विज्ञाता नहीं है । यह तेरा आत्मा अर्थात् तू ही अन्तर्यात्मा अमृत है तेरे सिवा सब नाशवान है ।

मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ। इस प्रकार मैं और हूँ के बीच जो भी उपाधि है वह सब वस्त्र है । जो वस्त्र का त्याग कर सकता वही उसके यथार्थ रूप का दर्शन करता है । कीट से ब्रह्मादिक के शरीर सब वस्त्र है । मैं शिव स्वरूप आत्मा नाम, रूप आकार से रहित सदा दिगम्बर हूँ। मान्यता ही वस्त्र है मान्यता से रहित 'मैं' आत्मा शिव दिगम्वर हूँ। मैंने वस्त्र धारण किये हैं, मैं ही इन्हें उतार फेकुंगा और कौन दूसरा है जो उतार सकेगा ? शब्द, स्पर्श, रूपादि जितने विषय है सब शिव स्वरूप आत्मा की पूजा है । सोते हैं वही समाधि, बोलते हैं वही स्तोत्र, चलना ही परिक्रमा, कर्म करना ही आराधना है । दिगम्बर होने के नाते मैं शिव सबसे उपेक्षित हूँ।

सिवा मुझ आत्मा के कुछ अन्य की प्रतीति न हो इसको योग निद्रा कहते हैं । ''अहमेव सर्वं''मैं ही सर्व हूँ। ऐसी भावना निर्विकल्प समाधि के पूर्व करें, फिर तुरन्त निर्विकल्प समाधि लग जाएगी । यह निर्विकल्प समाधि का साधन है इसे सविकल्प समाधि कहते हैं ।

अहं ब्रह्मास्मि यह कल्पना उठी इस भावना के बाद दूसरी कल्पना न उठे इस बीच कि अवधि सविकल्प समाधि है । ये दोनों समाधि चित्त की है । मैं इन दोनों समाधि का प्रकाशक साक्षी आत्मा हूँ।

किसी प्रकार का चिन्तन न करना ही अचित्य आत्मा का चिन्तन है ।

तत्त्व से कैसे जाने ?

तत्त्व जानने का मतलब यह है कि मैं को कुछ भी अन्य न मानकर मैं को मैं ही जानना यही तत्त्व से आत्मा को जानना है । मानने व जानने दोनों के भाव भिन्न-भिन्न होते हैं । मानना मन से होता है जानना आत्मा से, मैं से होता है । मानना मन का धर्म है, और जानना आत्मा का धर्म हैं । विचार 'मैं' मैं ब्रह्म हूँ। यहाँ तक मन है परन्तु जो ब्रह्म विचार को भी जानता है उसका नाम मैं है । और वही 'मैं' मैं हूँ, वही मैं आत्मा हूँ। इस प्रकार के जानने को ही तत्त्व को जानना है ।

''न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत''

दृष्टि के द्रष्टा को तूम नहीं देख सकते हो । ३,४,२ बृह. उप.

'मैं देह हूँ' यह अध्यास तमोगुण जन्य है । मैं जीव हूँ यह जीव अध्यास रजोगुण जन्य है, मैं ब्रह्म हूँ यह ब्रह्म अध्यास सत्त्वगुण जन्य है । मैं देश आत्मा में तीनों गुणों व तीनों अध्यास का सर्वथा अभाव है । मैं तीनों गुणों से परे निर्द्वन्द्व, नित्य, सत्वस्थ निर्योग एवं आत्मवान है । तीनों अध्यास मैं के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकते ।

निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन् ।। गीता २/४५

रस्सी ही अन्धकार दोष से सर्प रूप भासती है रस्सी में तीन काल में सर्प नहीं है । इसी तरह अपना आत्म स्वरूप है । जो अज्ञान दोषके कारण प्रपंच, माया, मन-रूप में भास रहा है । वास्तव में माया, मन तथा संसार किसी काल में न तो था, न है, न भविष्य में होगा ।

ध्यान, समाधि निर्विकल्पता लाने का विकल्प ही जिज्ञासु के नित्य प्राप्त निर्विकल्पता का बाधक है । समाधि करने का विकल्प ही सहज समाधि, सहज ज्ञान का बाधक है । इसका भाव यह है कि निर्विकल्प, समाधि, ध्यान तो अपना स्वरूप ही है जो बिना साधन से जन्म से ही सभी जीवों का स्वतः सिद्ध है । अब साधन द्वारा निर्विकल्प होने की, समधि-सिद्ध करने की चेष्टा करना बस यही नित्य निर्विकल्पता प्राप्त, समधि, ध्यान में सबसे बड़ी बाधा स्वयं साधक द्वारा सदा से निर्मित की जाती रही है ।

आत्मचिन्तन का संकल्प, आत्म चिन्तन में विक्षेप है । इसका भाव यह है कि आत्मा से भिन्न कुछ भी न जानना, कुछ भी न देखना, कुछ भी न मानना, कुछ भी भान न होगा यही आत्म चिन्तन है । अब आत्म चिन्तन के लिये अलग से साधन करने की चेष्टा करते हैं तो यही आत्म चिन्तन होने में विक्षेप है । क्योंकि ''मैं'' से कुछ भिन्नता भासती है तो उसी समय आत्म चिन्तन के लिये संकल्प होता है ।

-:दोहावली:-

देह मरे तू है अमर परमब्रह्म है सोय ।
अज्ञानी भटकत फिर, लखै सो ज्ञानी होय ।।

द्रष्टा साक्षी सर्व का, सतचित्त आनन्द रूप ।
ध्यान जाको योगी धरै, तेरो सोई स्वरूप ।।

बहुत पुण्य तें मिलत है, ज्ञानी के संग आय,
सब ग्रन्थन के सार को, पल में देत बताय ।।

मस्तराम मुर्देसे बोला, कुछ हमको बतलाओगे।
मुरदे में से एकमुरदा बोला, मरजाओ सुख पाओगे ।।

देहाभीमानी कर्तावन तु पछतायगा।
जिन्दाही तू मुरदा हो जा, तब आनन्द को पायेगा ।।

आप ब्रह्म माया भयो, ज्यों जल बर्फ होय।
बर्फ गलपानी भयो, तैसे जानहु सोय ।।

जैसे महदाकाशते, घटाकाश का भेद ।
ऐसे मिटे उपाधिके, जीव ब्रह्म निर्भेद ।।

एक जगह रहते नहि, जमकर कहीं फकीर,
निर्मल कहलाता वही, बहत रहत जो नीर ।।

जब लग फंासी मजहब की, तब लग होत न ज्ञान,
टूटै फंासी मजहबी, पावे पद निर्वाण ।।

समदृष्टि सद्गुरु मिला दिया अविचल ज्ञान,
जहं देखुं तह एकहै, दूजा नाहि आन ।।

समदृष्टि सद्गुरु किया, मेटा मरम विकार,
जहँ देखूं तह एकही, साहेब का दीदार ।।

शब्द शब्द बहु अंतरा, सार शब्द चित्त देय,
जा शब्दे साह मिले, सोई शब्द गहि लेय ।।

यह माटी का महल है, खाक मिलेगा धूर ।
सांई के जाने बिना, गदहा कुत्ता सूर ।।

चतुराई चुल्हे पड़े, घुरे पड़े अचार ।
तुलसी आत्म ज्ञान बिन, चारों वर्ण चमार ।।

जा घट आत्म ज्ञान नहीं ता धट जान मसान ।
ज्यों लोहार की धोकनी श्वांसलेत बिनु प्रान ।।

तुलसी मूरत राम की घट घट रही समाय ।
ज्यों मेहंदी के पात में लाली रही समाय ।।

तरो तरो सब कहत है, मरो कहत नहीं कोय ।
मुक्ता मरिबो जो कहे, सच्चा सद्‌गुरु सोय ।

मुक्ता सम गुरु है नहीं, है न जगत में और ।
लै पहुंचावे क्षणिक में, अमित काल के ठौर ।

हाड़ चाम का पुतला, जो मानत निज रूप ।
मुक्ता सो अति मूढ है , अन्त परे भव कूप ।।

जैसे एकहि खांड से अमित खिलौना होय ।
मुक्ता निश्चय जानिये, जग आतम नहीं दोय ।।

मन बुद्धि वाणी अरु, नयन लखत नहीं जाहि ।
मुक्ता इनको जो लखै,ब्रह्म जानिये ताहि ।।

जेहि वाणी न प्रकाशते, वाणी प्रकाशक जोय ।।
जेहि बल वाणी समर्थ है, 'मुक्ता' ब्रह्म है सोय ।।

मुक्ता मनहुँ न लखि सके, मन द्रष्टा जो आहि ।
जिस करके मन सिद्ध है, ब्रह्म कहत है ताहि ।।

नहि दीखे जो नेत्र सों, जेहिते नेत्र दिखात ।
शक्ति प्रदाता नयन को, ब्रह्म जान तेहि नाम ।।

सुना न जावे कर्ण सों जोहि आश्रित है कान ।
मुक्ता कर्ण जेहि लागि सुने, ब्रह्म ताहि तू जान ।।

नहि चेष्टित जो प्राण सों, जेहि ते प्राण जनाय ।
ब्रह्म वही है मुक्त कहि, जेहि बल प्राण चलाय ।।

तरुवर फल नहीं खात है, नदी न पीवे नीर ।
पर स्वास्थ के कारणे, सन्तन धरे शरीर ।।

देश काल दिशी विदेशहुं माहीं,
कहहु सो कहां जहां प्रभु नाही

ऐसा कोई देश काल वस्तु नहीं है जहां अस्ति भाति प्रिय व्यापक ब्रह्म नहीं है ।

तुलसी मूरत को पूजना, ज्यों गुड़ियों का खेल ।
सच्चे पिय सों भेट भई, धरी पिटारी मेल ।

सांचे को झुठाकहे झुठेको पतियाय ।
गलि गलि गोरस बिके, मदिरा बैठी विकाय ।।

मालातो मन की भली, फिरे जो आपहि आप ।
जीभ ओंठ हाले नहीं, होवे अजपा जाप ।। (सोऽहम्)

अलिपतंगमृग मीन गज, जरै एक ही आंच ।
तुलसी वे कैसे जिये जिनको लागे पांच ।।

राम नामको अंक है सब साधन है शून्य ।
अंक रहे दश गुन है, अंक गये सब शून्य ।।

जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुण गहहि पय, परि हरि बारि विकार ।।

राका शषी षोडश उगहि, तारागण समुदाय ।
सकल गिरिन जलने लगे, रवि बिन रात न जाय ।।

चलन चलन सब कोई कहे, बिरला पहुंचे कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय ।।

चार वेद षट शास्त्र पढि, लखेन सार असार ।
बिन विचार लादे फिरे, ज्यों खर चन्दन भार ।।

वक्ता ज्ञानी जगत में, पण्डित कवी अनन्त ।
सत्य पदारथ पारखी बिरला कोई संत ।।

कन फूंका गुरु हदका बेहद का गुरु और ।
बेहद का गुरु जब मिले, लगे ठिकाना ठौर ।

जहां बाज वासाकरे, तहाँ न पंछी और ।
ब्रह्म ज्ञान जेहि घर बसे, नहि कर्मन को ठौर ।।

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय ।।

चलती चक्की सब कोई देखे कील न देखे कोय ।
कील पकड़ कर जो रहे, साबुत बचा है सोय ।।

उपजही जासु अंशते नाना, विष्णु विरंचि शम्भू भगवान ।
उपजहि जासु अंश गुण खानी,अगणित उमा रमा ब्रह्मी ।

गुरु को पहिचानै सोई, आप गुरु जो होय ।
ऐसा लाख करोड़ में, बिरला निकलै कोय ।।

कबीरा खड़े बाजार में, लिये लुकाठी हाथ ।
जो घर फुंके आपना, चले हमारे साथ ।।

माला मुझसे लड़ पड़ी, तू क्या फेरे मोही ।
जो मन फेरे जगत से, राम मिलांउ तोहि ।।

जाति न पूछिये साधुकी, जब पूछिय तब ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ।।

वेष देखि मत भूलिये, बूझि लीजिये ज्ञान ।
बिना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान ।।

मन माला सतगुरु दई, सुरत डोर में पोय ।
बिना हाथ निश दिन जपु, ब्रह्म जाप है सोय ।।

जप मरे अजपा मरे, अनहद हू मरि जाय ।
सूरत समानी सिन्धु में, ताहि काल नहि खाय ।।

विष्णु शंकर आदि की, जड़ प्रतिमा जग माहि ।
जड़ मूरत पूजत फिरै, चित गुरु पूजैं नाहि ।।

जेहि विषया सन्तन तजि, मूढ ताहि लिपटाय ।
जो नर डारत वमन करी, श्वान स्वाद सों खाय ।।

राम नाम के जाप में, भूलि रहे सब कोय ।
राम रूप जाने बिना, कैसे मुक्ति होय ।।

राम राम सब कोई रटे, जानी राम काहि दूर ।
राम निरन्तर रम रहा, सब घटमें भरपुर ।।

आप भुलानें आप में, बंन्ध्यो आप में आप ।
जाको तू ढूंढत फिरे, सो तू आपहि आप ।।

भूखा जग में कोई नहीं, सब की गठरी लाल ।
आंख खोल देखत नहीं, ताते भयो कंगाल ।।

बै खिलौना खांड में, खांड खिलोना माहि ।
ऐसे जब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माहि ।।

चलते चलते युग भया, मिला न प्रभु का धाम ।
पांव धरा वहां गांव था, बिन जाने किस गाम ।।

हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार ।
हारा तो हरि से मिले, जीता राम की लार ।।

हरिजन गांठन बान्धई, उदर समाना लेय ।
आगे पीछे हरि चले, जो चाहे सो देय ।।

साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहि ।
जो धन का भूखा फिर, सो तो साधु नाहि ।।

राम कृष्ण अवतार है इनकी नाहीं मांड ।
जिन साहब सृष्टिकरी, तिन्हु न जाया रांड ।।

गिरवर धारयो कृष्ण जी, द्रोणागिरि हनुमन्त ।
शेष नाग सब सृष्टि धरी, इन में को भगवन्त ।।

समुद्र पार लंका गयो, सीता को भर तार ।
ते अगस्त उन्चै गयौ, इनमें को करतार ।।

रामा मर गये कृष्णा मर गये, मर गई सीता माई ।
निरन्जन उसे क्यों नहीं भजते, जिसे मौत कभी नहीं आई ।।

नारी कहावे पियु की रहे और संग सोय ।
जार पति हृदय बसे, पिया खुशी क्या होय ।।

नाम पिया का छोड़िके, करे और का जाप ।
वैश्या जन्मा पुत्र को, कहे कौन है बाप ।।

चलन चलन सब कोई कहे, मोहि अंदेशा और ।
साहब से परिचय नहीं, पहुंचेंगे केहि ठैर ।।

नारी ऋतु के बिना, मर्द नपुन्सक होय ।
ज्ञान गर्भ आये बिना, मुक्ति कहां से होय ।।

एकउ सुमिरो नानका, जल थल रहयो समाय ।
दूजा काहे सुमिरिये, जन्मे और मर जाय ।।

संतन आवत देखिके, चरण लागो लोट ।
शीश नवावत डही पड़े, सब पापन की पेर ।।

कर्माणि चित्त शुद्धयार्थं एकाग्रयार्थं उपासना ।
मोक्षार्थं ब्रह्म विज्ञानं सर्व वेदान्त निर्णयः ।।

◆◆◆◆◆◆◆

स्वामी निरंजन ग्रंथावली

१. ज्ञानोदय
२. शान्तिपुष्प
३. भूली बिसरी स्मृति
४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी – १
५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी – २
६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी – ३
७. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी – ४
८. मैं अमृत का सागर
९. मैं ब्रह्म हूँ
१०. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश
११. सीता गीता
१२. राम गीता
१३. गुरु गीता
१४. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका
१५. भागवत रहस्य
१६. आत्म साक्षात्कार
१७. मन की जाने राम
१८. योग वशिष्ठ सार
१९. निरंजन भजनामृत सरिता
२०. स्वरूप चिन्तन
२१. कर्म से मोक्ष नहीं
२२. श्रद्धा की प्रतिमा सद्गुरु
२३. अमृत बिन्दु
२४. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली
२५. सहज समाधि
२६. ज्ञान ज्योति
२७. कबीर साखी संकलन
२८. सहज ध्यान
२९. हे राम उठो जागो
३०. सद्गुरु कौन ?
३१. श्रीराम चिन्तन
३२. तत्त्वमसि
३३. साक्षी की खोज

अधीक जानकारि तथा ग्रन्थ प्राप्ति के लिये संपर्क करें :

श्री अमीय कुमार महान्ति

प्लट नं : **3822**, श्रीराम नगर, भुवनेश्वर–2 (उड़िशा)

फोन नं : **(0674) 2340076**

आत्मज्ञान का मासिक पत्रिका **'तत्त्वमसि'**

संपर्क : शशि भूषण पृष्टि, संपादक

ए–**9**, इंजिनयरिं कालेज केम्पस, राउरकेला – ८ (उड़िशा) फोन : **0661-2472345**